

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

३८८



महाकविश्रीमद्भिकादतव्यासप्रणीतं

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

(पण्डितपछार)

नवीन पाठ्यक्रमानुसार लघु एवं अतिलघु
प्रश्नोत्तर सहित

व्याख्याकारः

आचार्य श्रीनिवास शर्मा



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

॥ श्रीः॥
चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

३८८

महाकविश्रीमद्भिकादत्तव्यासप्रणीतं

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

(पण्डितपछार)

व्याख्याकारः
आचार्य श्रीनिवास शर्मा



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

पृष्ठ : 4+105

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : +91 542-2335263; 2335264

email : csp_naveen@yahoo.co.in

website : www.chaukhamba.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकार्धान

संस्करण 2015 ई०

मूल्य : ₹ 40.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : +91 11-23286537

email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

•

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

प्राक्कथन

संस्कृत साहित्य का आकाशमण्डल अनादि काल से अनेकानेक देवीप्यमान नक्षत्रों से सुशोभित रहा है और उसी में एक स्थान पर आधुनिककालीन संस्कृत वाङ्मय के उद्धारक पं० अम्बिकादत्त व्यास भी अवस्थित हैं। संवत् १९१५ में जयपुर के सिलवटों में प्रादुर्भूत पं० दुर्गादत्त गौड़ के सुपुत्र पं० अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत-साहित्य के गद्याकाश में प्रखरतया प्रकाशमान सूर्य के समान सदा-सर्वदा के लिये विराजमान हैं। काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी द्वारा प्रदत्त घटिकाशत, काकरोली के वल्लभकुलावतंस गोस्वामी बालकृष्णलाल द्वारा भारतरत्न, अयोध्यानरेश द्वारा शतावधान, बम्बई महासभा द्वारा भारतभूषण एवं महाकवि की उपाधि को भी इन्होंने सुशोभित किया था। पण्डितसभा द्वारा इन्हें व्यास की उपाधि से भी विभूषित किया गया था, जो इन्हें इतना अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ कि अपने नाम के आगे लगी मूल उपाधि गौड़ का परित्याग कर इन्होंने 'व्यास' को ही अपनी उपाधि के रूप में अंगीकार कर लिया। शिक्षाप्राप्ति के उपरान्त विक्रम संवत् १९२५ में अपनी प्रथम रचना 'प्रस्तारदीपक' से लेखनकार्य में प्रवृत्त होकर १९५४ तक की अवधि में इन्होंने संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य में छोटे-बड़े कुल मिलाकर अठहत्तर रचनायें की, जिनमें गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् एवं शिवराजविजयम् इनकी अतिप्रसिद्ध रचनायें हैं।

संस्कृत साहित्य में पदों की शुद्धि को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है; इसीलिये संस्कृत साहित्य के आधारस्तम्भ व्याकरणशास्त्र में शब्दों का ही अनुशासन किया गया है; फिर भी लोकपरम्परा से कतिपय अशुद्ध शब्द भी पूर्ण निष्ठा के साथ चिर काल से अध्ययन-अध्यापन-लेखन आदि में प्रचलित रहे हैं; जिन्हें प्रमादवश शुद्ध ही समझ लिया गया है और विना हिच-किचाहट के उनका निरन्तर व्यवहार भी किया जाता रहा है। 'उपरोक्त, एकत्रित, लब्धप्रतिष्ठित' आदि प्रचलित शब्द इसके उदाहरणस्वरूप देखे जा सकते हैं।

साहित्य समाज में प्रचलित इन अशुद्धियों से विद्वत्समाज को परिचित कराने के उद्देश्य से ही पं० अम्बिकादत्त व्यास ने विक्रम संवत् १९३७ में

प्रकृत गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् नामक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं लघु कलेक्टर वाले ग्रन्थ का प्रणयन किया था, जिसको कि पण्डितपछार नाम से भी अभिहित किया जाता है। इसमें ग्रथित कुल बीस पद्यों एवं एक सौ तीस वाक्यों में व्यास जी ने सामान्यतया समझ में न आनेवाली अशुद्धियों का समावेश किया है, जो व्याकरण शास्त्र के अभ्यास एवं उसकी प्रामादिक त्रुटियों की जानकारी प्राप्त करने के लिये सर्वविध उपादेय हैं। इस ग्रन्थ के इसी वैशिष्ट्य को ध्यान में रखकर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ने इसे अपने मध्यमास्तरीय पाठ्यक्रम में स्थान प्रदान किया है।

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् की प्रकृत ज्योत्स्ना हिन्दी व्याख्या में पुस्तक के मूल पाठगत अशुद्धियों को व्याकरण शास्त्र के अनुसार इंगित करते हुये उनके शुद्ध स्वरूप को तो स्पष्ट किया ही गया है, साथ ही साथ समस्त श्लोकों एवं वाक्यों के अर्थ भी पाठकों की सुविधा हेतु दे दिये गये हैं, जो कि जिज्ञासु छात्रों के लिये अत्यन्त ही उपादेय सिद्ध होंगे। कूट पद्यों के अर्थज्ञानार्थ अन्वय की उपादेयता को दृष्टिगत कर उनके साथ अन्वय भी दे दिया गया है।

पुस्तक को मूर्त्त स्वरूप में अतिशीघ्र प्रकाशित कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के स्वत्वाधिकारी श्री नवनीत दास जी गुप्त कोटिशः धन्यवादार्ह हैं; यतः उन्हीं की प्रेरणा एवं विश्वास के फलस्वरूप मुझ जैसे अल्पज्ञ व्यक्ति ने इस गुरुतर कार्य को सम्पन्न करने का दुःसाहस किया है।

अन्त में अत्यन्त अल्प समय में व्याख्या पूर्ण करने के कारण उलझी एवं बिखरी हुई पाण्डुलिपि को सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान कर सुसज्जित पुस्तक का आकार प्रदान करने के लिये 'मुकेश कम्प्यूटर्स' के स्वत्वाधिकारी श्री मुकेश कुमार वास्तविक धन्यवाद के पात्र हैं; यतः उनकी तत्परता एवं सक्रियता के अभाव में ग्रन्थ द्वारा मूर्त्त स्वरूप धारण कर पाना सम्भव ही नहीं हो सकता था; अतः ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि सदा-सर्वदा उनकी सर्वविध उन्नति करता रहे।

आशा एवं विश्वास है कि गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् का यह संस्करण पाठकों के लिये सर्वविध उपादेय होगा और उनके द्वारा अवश्य ही अंगीकार किया जायेगा।

॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीमद्भिकादत्तव्यासप्रणीतं

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

‘ज्योत्स्ना’भाषाटीकासंवलितम्



श्लोकाः

त्वयि त्रातरि भोः कृष्ण ! दुःखं नोऽत्रास्ति किञ्चन ।
इयं सहप्रणतिना कृता ते चरणेऽञ्जलिः ॥१॥

* ज्योत्स्ना *

विश्वेशं माधवं द्वुण्ठीं दण्डपाणिञ्च भैरवम् ।
मृत्युञ्जयं महाकालं नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥
अभिलाषसुतो धीमान् लीलादेव्यास्तु गर्भजः ।
छात्राणामुपकाराय गुप्ताशुद्धिप्रदर्शने ॥
हिन्दीभाषां समादाय ज्योत्स्नानामाभिधाऽकरोत् ।
टीका सुललिता धन्या सरला सुगमाऽपि च ॥

भावार्थ— हे कृष्ण ! आपके रक्षक रहते हुये हमें इस संसार में किसी प्रकार का दुःख नहीं है । मैं प्रणतिपूर्वक आपके चरणों में अपनी अञ्जलि समर्पित करता हूँ ॥

व्याकरण— प्रकृत श्लोक में ‘नोऽत्रास्ति’ के स्थान पर शुद्ध रूप ‘नो अत्राऽस्ति’ होगा; क्योंकि निषेधार्थक ‘नो’ शब्द के चादि गण में पठित होने से निपातसंज्ञक होने के कारण ‘ओत्’ (पा० सू०-१.१.१५) से प्रगृह्यसंज्ञा होकर ‘प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्’ (पा० सू०-६.१.१२५) से प्रकृतिभाव होने

के कारण 'एडि पररूपम्' (पा० सू०-६.१.९४) से पूर्वरूप सन्धि होनी सम्भव ही नहीं होगी ।

इसी प्रकार 'इयं सहप्रणतिना कृता' भी अशुद्ध प्रयोग है । इसका शुद्ध रूप 'अयं सह प्रणत्या कृतः' होगा । इसका कारण यह है कि अमरकोश के 'तौ युतावञ्जलिः पुमान्' के अनुसार 'अञ्जलि' शब्द के पुँलिङ्ग होने से—

या विशेष्येषु दृश्यन्ते लिङ्गसंख्याविभक्तयः ।

प्रायस्ता एव कर्तव्या समानार्थे विशेषणे ॥

इस नियम के फलस्वरूप 'इयम्' के स्थान पर 'अयम्' और 'कृताः' के स्थान 'कृतः' ही शुद्ध रूप होगा । साथ ही 'स्त्रियां क्तिन्' (पा० सू०-३.३.९४) से क्तिन् प्रत्ययान्त होने के कारण सम्पन्न रूप 'प्रणति' का तृतीया एकवचन में शुद्ध रूप 'प्रणत्या' होगा ॥१॥

हितैषां जगतो धत्सि लक्ष्मी ते पादपीडिका ।

नित्यस्ते मे च सम्बन्धो पिता त्वं ते सुतोऽस्म्यहम् ॥२॥

भावार्थ— आप सम्पूर्ण संसार के कल्याण को धारण करते हैं । साक्षात् लक्ष्मी जी आपकी चरण-संवाहिका हैं । आप हमारे पिता हैं तथा मैं आपका पुत्र हूँ, इस प्रकार मेरा तथा आपका नित्य सम्बन्ध है ॥

व्याकरण— उपर्युक्त श्लोक में 'हितैषां' अशुद्ध प्रयोग है; इसके स्थान पर 'इच्छा' (पा० सू०-३.३.१०१) से निपातन होने के कारण शुद्ध रूप 'हितेच्छां' होगा ।

इसी प्रकार धारणार्थक 'धा' धातु के आत्मनेपदी होने से लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन में उसका शुद्ध स्वरूप 'धत्से' होने के कारण यहाँ 'धत्सि' भी अशुद्ध प्रयोग है ।

एवमेव 'लक्ष्मी ते' के स्थान पर शुद्ध रूप 'लक्ष्मीस्ते' होगा; क्योंकि 'लक्ष्मी' शब्द के अड्यन्त होने से प्रथमा एकवचन में प्राप्त सु विभक्ति का लोप नहीं होगा । कहा भी गया है—

अवीतन्त्रीतरीलक्ष्मीधीहीश्रीणामुणादिषु ।

सप्तस्त्रीलिङ्गशब्दानां न सुलोपः कदाचन ॥

फिर भी पक्ष में ‘कृदिकारादक्तिनः’ (गणसूत्र) से विकल्प से डीष् होने के पश्चात् ‘हल्ड्याब्ध्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्’ (पा० सू०-६.१.६८) से सु का लोप होने के फलस्वरूप ‘लक्ष्मी’ रूप भी साधु होता है। कहा भी है—

वातप्रमी श्री लक्ष्मीति पक्षे ड्यन्ताः सुसाधवः ।

‘लक्ष्मीरक्ष्मी हरिप्रिया’ इस प्रकार उल्लेख करते हुये द्विरूपकोश द्वारा भी ‘लक्ष्मीः’ एवं ‘लक्ष्मी’— दोनों ही रूपों को साधु माना गया है।

इसी प्रकार उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त ‘ते’ और ‘मे’ के स्थान पर ‘तव’ और ‘मम’ ही होगा; क्योंकि ‘न चवाहाऽहैवयुक्ते’ (पा० सू०-८.१.२४) सूत्र के अनुसार ‘च’ के योग में ‘तव’ एवं ‘मम’ को ‘ते’ एवं ‘मे’ आदेश नहीं होता।

एवमेव श्लोक में प्रयुक्त ‘सम्बन्धो’ रूप भी अशुद्ध है; क्योंकि उसके आगे स्थित ‘पिता’-स्थित पकार की गणना ‘हश्’ प्रत्याहार के अन्तर्गत न होने के कारण ‘हशि च’ (पा० सू०-६.१.११४) की प्रवृत्ति न होने से उत्तर के अभाव में ‘सम्बन्धो’ के स्थान पर शुद्ध स्वरूप ‘सम्बन्धः’ ही होगा, न कि ‘सम्बन्धो’ ॥२॥

तन्त्री करे यस्य सस्त्वां सदा गायति नारदः ।

ऋषिभिर्महिमा दिव्या ते सदा ब्रूयते मुदा ॥३॥

भावार्थ— जिन नारद के हाथ में वीणा है, वे सदा आपकी महिमा का गायन करते रहते हैं। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि भी प्रसन्न होकर आपके दिव्य यश का वर्णन करते रहते हैं ॥

व्याकरण— इस श्लोक में प्रयुक्त ‘तन्त्री’ शब्द साधु नहीं है; क्योंकि अङ्गन्त होने के कारण प्रथमा एकवचन में तन्त्री शब्द से प्राप्त ‘सु’ विभक्ति का लोप नहीं होता; फलस्वरूप विसर्ग होकर ‘तन्त्रीः’ शब्द की निष्पत्ति होती है।

एवमेव ‘सस्त्वां’ भी अशुद्ध प्रयोग ही है; क्योंकि ‘सः’ के पश्चात् हलादि ‘त्वां’ होने के कारण सुलोपविधायक ‘एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्जस्मासे हलि’ (पा० सू०-६.१.३२) की प्रवृत्ति होने के फलस्वरूप शुद्ध स्वरूप ‘स त्वां’ होगा; ‘सस्त्वां’ नहीं ।

एवमेव श्लोक में प्रयुक्त ‘दिव्या’ भी अशुद्ध है; क्योंकि ‘पृथ्व्यादिभ्य

‘इमनिज्वा’ (पा० सू०-५.१.१२२) से इमनिच् प्रत्ययान्त ‘महिमन्’ शब्द के पुँलिङ्ग होने के कारण उसके विशेषणभूत होने के कारण पुँलिङ्ग स्वरूप ‘दिव्यः’ होगा; न कि ‘दिव्या’ । एवमेव ‘अनुदात्तं सर्वमपादादौ’ (पा० सू०-८. १.१८) से पादादि में आने वाले ‘तव’ के स्थान पर ‘ते’ आदेश का निषेध होकर शुद्ध रूप ‘तव’ होने से यहाँ प्रयुक्त ‘ते’ भी अशुद्ध ही है ।

इसी प्रकार श्लोक में प्रयुक्त ‘ब्रूयते’ भी अशुद्ध है; क्योंकि आर्धधातुक ‘ब्रू’ धातु को ‘ब्रुबो वचि’ (पा० सू०-२.४.५३) से ‘वचि’ आदेश होने के कारण लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन में ‘उच्यते’ होगा; ‘ब्रूयते’ नहीं होगा ॥३॥

यस्य ध्वजायां गरुडो भुजायां स्वर्णकङ्कणः ।
कण्ठे च कौस्तुभं भाति स मय्यनुगृहीत्यति ॥४॥

भावार्थ— जिस कृष्ण की ध्वजा में गरुड़ विराजमान हैं, जो अपनां भुजाओं में स्वर्णकिंकण धारण करते हैं एवं जिनके कण्ठ में कौस्तुभ मणि सुशोभित होती है, वे कृष्ण मेरे ऊपर कृपा करेंगे ।

व्याकरण— यहाँ प्रयुक्त ‘ध्वजायां’ ‘केतनं ध्वजमस्त्रियाम्’ (अमरकोश) के अनुसार ‘ध्वज’ शब्द के पुँलिङ्ग होने के कारण अशुद्ध है; क्योंकि पुँलिङ्ग ध्वज शब्द के सप्तमी एकवचन में शुद्ध रूप ‘ध्वजे’ होगा; ‘ध्वजायां’ नहीं होगा ।

एवमेव ‘भुजबाहू प्रवेष्टो दोः’ (अमरकोश) के अनुसार ‘भुज’ शब्द के भी पुँलिङ्ग होने के कारण सप्तमी एकवचन में ‘भुजे’ होगा; अतः यहाँ प्रयुक्त ‘भुजायां’ अशुद्ध है ।

इसी प्रकार ‘स्वर्णकङ्कणः’ के स्थान पर शुद्ध रूप ‘स्वर्णकङ्कणम्’ होगा; क्योंकि ‘कङ्कणं करभूषणम्’ (अमरकोश) के अनुसार ‘कङ्कण’ शब्द नपुंसक लिङ्ग है । साथ ही ‘कौस्तुभो मणिः’ (अमरकोश) के अनुसार कौस्तुभ शब्द के पुँलिङ्ग होने के कारण ‘कौस्तुभो भाति’ शुद्ध प्रयोग होगा, यहाँ प्रयुक्त ‘कौस्तुभं भाति’ नहीं । अतः ‘कौस्तुभं भाति’ भी अशुद्ध प्रयोग ही है ।

यहाँ प्रयुक्त ‘अनुगृहीत्यति’ भी अशुद्ध प्रयोग है; क्योंकि ‘ग्रहोऽलिटि दीर्घः’ (पा० सू०-७.२.३७) से ‘हि’ को दीर्घ होने के फलस्वरूप सम्प्रसारण

न होने के कारण शुद्ध स्वरूप ‘अनुग्रहीष्यति’ होगा ॥४॥

त्वां याचितं मया यद्यद् देहि तन्मां लघु प्रभो ।
हे नाथ ! मेऽखिलान् पापान् क्षमस्व जगदीश्वर ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे प्रभो ! मैंने आपसे जिन-जिन वस्तुओं की कामना की है, उन्हें मेरे लिये प्रदान कीजिये । हे नाथ ! हे जगदीश्वर ! मेरे द्वारा किये गये सभी पापों को आप क्षमा करें ॥

व्याकरण— उपर्युक्त श्लोक में प्रथमतः पठित ‘त्वां याचितं मया’ में प्रयुक्त ‘याचितं’ के याच् धातु का पाठ ‘दुह्’ आदि धातुओं के साथ होने से धातु से होने वाला प्रत्यय अप्रधान कर्म में ही होने के कारण यहाँ पर शुद्ध रूप ‘त्वं याचितो मया’ होगा ।

इसी प्रकार द्वितीय पाद में पठित ‘देहि तन्मां लघु’ में सम्प्रदान का ध्वनन होने के कारण अस्मद् शब्द से द्वितीया न होकर चतुर्थी का विधान होने से ‘मां’ के स्थान पर शुद्ध स्वरूप ‘महां’ होगा ।

एवमेव तृतीय पाद में पठित ‘हे नाथ ! मेऽखिलान् पापान्’ में ‘नाथ’ शब्द के आमन्त्रितसंज्ञक होने से ‘आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्’ (पा० सू०-८.१.७२) की प्रवृत्ति होने के कारण उसके अविद्यमानवत् होने से ‘मम’ के स्थान पर होनेवाले ‘मे’ आदेश का ‘अनुदातं सर्वमपादादौ’ (पा० सू०-८. १.१८) से निषेध की प्रवृत्ति होने के कारण शुद्ध स्वरूप ‘मम’ होगा, ‘मे’ नहीं ।

एवमेव ‘मेऽखिलान् पापान्’ में प्रयुक्त ‘पाप’ शब्द का पाठ ‘पापं किल्विष-कल्मषम्’ (अमरकोश) के अनुसार नपुँसक लिङ्ग में होने से उसका शुद्ध स्वरूप ‘पापानि’ होगा; फलस्वरूप यहाँ प्रयुक्त ‘अखिलान् पापान्’ के स्थान पर शुद्ध स्वरूप ‘अखिलं पापम्’ अथवा ‘अखिलानि पापानि’ होगा ॥५॥

जगत्यस्मिन् महद्बोरे गुरौ दुःखप्रदातरि ।
निरालम्बोऽस्मि पतितः क्वास्ति ते चरणं तरिः ॥६॥

भावार्थ— मैं इस घोर तथा गुरुतर दुःखप्रद संसार में आश्रयहीन होकर गिरा पड़ा हुआ हूँ । हे कृष्ण ! इस संसार-सागर के लिये तरणिसदृश आपके चरण कहाँ हैं ? मुझे उनका आश्रय चाहिये ॥

व्याकरण— उपर्युक्त श्लोक में ‘महद्घोरे’ यह अशुद्ध प्रयोग है; यतः महान् शब्द को ‘आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः’ (पा० सू०-६.३.४६) सूत्र से आत्व होने से यहाँ शुद्ध स्वरूप ‘महघोरे’ होगा ॥६॥

त्वमेवात्र समागच्छ मा ता त्वन्निकटे नय ।
अहं देव त एवास्मि दुःखसङ्घातप्रमोचय ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे नाथ ! मेरे पास वह सामर्थ्य नहीं है कि मैं आपके पास आ सकूँ; अतः मेरे ऊपर कृपा करके आप स्वयं मेरे उद्धार हेतु मेरे पास आइये अथवा मुझे अपने निकट ले चलिये । मैं तो वही संसार-सागर में निमग्न जीव हूँ; मुझे इस दुःखसंघात से मुक्त कीजिये ॥

व्याकरण— उपर्युक्त श्लोक के प्रथम पाद में पठित ‘मा’ पद अशुद्ध है; क्योंकि ‘माम्’ को होने वाले ‘मा’ आदेश का ‘अनुदात्तं सर्वमपादादौ’ (पा० सू०-८.१.१८) से निषेध होने के कारण ‘मा’ पद की स्थिति ही सम्भव नहीं है; फलस्वरूप शुद्ध रूप ‘माम्’ ही होगा, ‘मा’ नहीं ।

एवमेव ‘न चवाहाहैवयुक्ते’ (पा० सू०-८.१.२४) के अनुसार ‘एव’ शब्द के योग में ‘तव’ को ‘ते’ आदेश नहीं हो सकता; अतः शुद्ध स्वरूप ‘तवैवास्मि’ होगा, ‘त एवाऽस्मि’ नहीं ॥७॥

न कोऽपि मित्रस्त्वदृते वो गाययति नारदम् ।
त्वमेव प्रीतिपात्रोऽसि मा भैः कस्ते विना वदेत् ॥ ८ ॥

भावार्थ— ‘आपको छोड़कर इस संसार में कोई भी हितचिन्तक मित्र नहीं है’ भगवान् नारद सदैव यही कहते रहते हैं । हे नाथ ! तुम्हीं मेरे प्रिय पात्र हो । ‘तुम हर प्रकार से निर्भय हो जाओ’ ऐसा मेरे लिये आप-जैसे दयालु को छोड़कर और कौन कह सकता है ?

व्याकरण— यहाँ पर प्रथम पाद में प्रयुक्त सुहृद्वाचक ‘मित्र’ शब्द के ‘अथ मित्रं सखा सुहृत्’ (अमरकोश) के अनुसार नपुंसकलिङ्गी होने से शुद्ध स्वरूप ‘मित्रम्’ होना चाहिये; साथ ही ‘मित्रम्’ का परामर्शक होने के कारण ‘किमपि’ होना चाहिये, ‘कोऽपि’ नहीं होना चाहिये । इस प्रकार प्रकृत में वाक्य का शुद्ध स्वरूप ‘न किमपि मित्रन्त्वदृते’ होगा; न कि ‘न कोऽपि मित्र-स्त्वदृते’ ।

एवमेव द्वितीय पाद में प्रयुक्त ‘गाययति’ का ‘गै’ धातु गीत आदि कर्म के सम्बन्ध होने के कारण सकर्मक है, अकर्मक नहीं। साथ ही प्रकृत में गीतात्मक या शब्दात्मक कर्म की विवक्षा न होने के कारण यह शब्दकर्मक भी नहीं है; फलस्वरूप अनुकृत कर्ता ‘नारद’ शब्द से तृतीया विभक्ति होने के कारण ‘नारदेन’ प्रयोग होगा, ‘नारदं’ नहीं; लेकिन शब्द या गीतरूप कर्म का अध्याहार करने पर द्वितीयान्त ‘नारदं’ भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार ‘त्वमेव प्रीतिपात्रोऽसि’ में भाजन एवं योग्य अर्थ को बोध कराने वाला ‘पात्र’ शब्द के ‘योग्यभाजनयोः पात्रं’ (अमरकोश) के अनुसार नपुँसक लिङ्ग होने के कारण अशुद्ध प्रयोग ‘प्रीतिपात्रः’ के स्थान पर शुद्ध प्रयोग ‘प्रीतिपात्रं’ होगा।

एवमेव लुड्ड लकार में विहित सिच् आदेश का लोप न होने एवं माड् का योग होने के कारण ‘लुड्डलुड्डक्ष्वदुदात्तः’ (पा० सू०-६.४.७१) से अडागम के अभाव में शुद्ध स्वरूप ‘मा भैषीः’ होगा; ‘मा भैः’ नहीं होगा।

एवमेव श्लोकान्त में प्रयुक्त ‘ते विना वदेत्’ भी अशुद्ध है; क्योंकि ‘पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्’ (पा० सू०-२.३.३२) के अनुसार ‘विना’ का योग होने पर द्वितीया, तृतीया एवं पञ्चमी विभक्ति का ही विधान किया गया है; प्रथमा का नहीं। फलस्वरूप ‘ते विना’ के स्थान पर ‘त्वां विना’, ‘त्वया विना’ अथवा ‘त्वद्विना’— ये तीन प्रयोग ही यहाँ साधु होंगे; ‘ते विना’ साधु नहीं होगा ॥८॥

जाजप्यन्ते नाम तव सर्वोपनिषदः सदा ।
स्मृतीतिहासास्तेष्वेव चाचर्यन्ते बुधोदिताः ॥९॥

भावार्थ— समस्त उपनिषद् आपके ही मंगलमय नाम का निरन्तर जप करते रहते हैं। विद्वानों, ऋषियों द्वारा रचित स्मृतियाँ तथा इतिहास आदि ग्रन्थ भी उन्हीं नामों के समीप सतत् विचरण करते रहते हैं ॥

व्याकरण— उपर्युक्त श्लोक में प्रथमतः पठित ‘जाजप्यन्ते’ पद समीचीन नहीं है; क्योंकि ‘लुप्’ आदि धातुओं से ‘लुपसदचरजपजभदहृशगृभ्यो भावगर्हयाम्’ (पा० सू०-३.१.२४) से भाव्यमान यड् प्रत्यय मात्र निन्दा अर्थ में

विहित है। यहाँ पर उपनिषदों द्वारा किया जाने वाले भगवत्राम-जपस्वरूप कर्म के आदरपूर्वक होने से उक्त यड़विधायक सूत्र की प्रवृत्ति सम्भव ही नहीं है; फलतः यड़ का अभाव होने से यहाँ शुद्ध स्वरूप 'भृशं जपन्ति' ही होगा; 'जाजप्यन्ते' नहीं होगा।

एवमेव एकवचन 'नाम' पद के लिये प्रयुक्त सर्वनाम भी एकवचन ही होना चाहिये, बहुवचन नहीं। अतएव 'तत्' शब्द के सप्तमी एकवचन में होने वाले 'तस्मिन्' शब्द का प्रयोग ही यहाँ उचित है; बहुवचनान्त 'तेषु' का प्रयोग उचित नहीं है।

इसी प्रकार उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त क्रियापद 'चाचर्यन्ते' भी शुद्ध नहीं है; यतः यड़प्रत्ययान्त 'चर्' धातु से 'गर्हितं चरन्ति' अर्थ में 'चरफलोश्च' (पा० सू०-७.८.८७) से अभ्यास को नुक् का आगम और 'उत्परस्यातः' (पा० सू०-७.४.८८) से उत्तरखण्डावयवक अकार को उकार आदेश होकर 'चञ्चूर्यन्ते' रूप निष्पन्न होता है; 'चाचर्यन्ते' नहीं। लेकिन प्रकृत में 'गर्हितं चरन्ति' का भाव ध्वनित नहीं होने से यहाँ 'चञ्चूर्यन्ते' प्रयोग भी नहीं किया जा सकता। अतएव यहाँ पर 'अतिशयेन चरन्ति' पाठ का प्रयोग ही साधु होगा ॥१॥

पद्मगन्धं मुखं दृष्ट्वा बाहू चाजानुलम्बिते ।

तवैव शरणं यामि दयस्व यदि रोचते ॥१०॥

भावार्थ— कमल की सुगन्ध वाले आपके सुन्दर मुख तथा जानुपर्यन्त लम्बी भुजाओं को देखकर आपके प्रति मेरे मन में विश्वास का भाव बढ़ा है; इसलिये आपकी ही शरण में मैं आ रहा हूँ। यदि आपको अच्छा लगे तो कृपा कर मुझे अपना लीजिये ॥

व्याकरण— प्रकृत श्लोक में उपमान शब्द 'पद्म' का प्रयोग पूर्व में होने से उपमेय 'गन्ध' शब्द के 'उपमानाच्च' (पा० सू०-५.४.१३७) से इकारान्त हो जाने के कारण 'पद्मगन्धं' के स्थान पर 'पद्मगन्धि' रूप ही शुद्ध होगा।

एवमेव यहाँ पर प्रयुक्त शब्द 'चाजानुलम्बिते' भी अशुद्ध है; यतः उसका विशेष्यभूत द्विवचनान्त 'बाहू' शब्द 'भुजबाहू प्रवेष्टो दोः' (अमरकोश) के अनुसार पुँलिङ्ग है; अतः उसके विशेषणस्वरूप प्रयुक्त 'लम्बित' शब्द भी

पुँलिलङ्गं होने से द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में उसका शुद्ध स्वरूप ‘लम्बितौ’ होगा; नपुँसकलिङ्गी ‘लम्बिते’ नहीं होगा ॥१०॥

सश्रद्धया यमभ्यर्च्य जयन्ते मदनं जनाः ।

सुष्टुतः श्रेयमिच्छद्धिः शङ्करः शरणोऽस्तु नः ॥११॥

भावार्थ— मनुष्य श्रद्धापूर्वक जिसकी अर्चना करके कामदेव पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं, भली प्रकार से स्तुति द्वारा पूजित वे भगवान् शिव कल्याण की इच्छा रखने वाले मेरे लिये शरण बनें ॥

व्याकरण— ‘फल भी क्रियाजन्य फल का व्यपदेशिवद्वावेन सम्बन्धी होने के कारण फल भी कर्मकारक होता है’— लघुशब्देन्दुशेखरकार के इस वचन के अनुसार उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त ‘सश्रद्धया’ पद ‘अभ्यर्च्य’ क्रियापद का विशेषण होने के कारण कर्म कारक है; अतः यहाँ शुद्ध स्वरूप द्वितीयान्त ‘सश्रद्धं’ होगा; तृतीयान्त ‘सश्रद्धया’ नहीं ।

एवमेव यहाँ प्रयुक्त क्रियापद ‘जयन्ते’ भी पूर्णतः अशुद्ध है; क्योंकि भ्वादि गण में पठित ‘जि’ धातु परस्मैपदी है; आत्मनेपदी नहीं । अतः लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में उसका स्वरूप ‘जयन्ति’ होगा; ‘जयन्ते’ नहीं होगा ।

इसी प्रकार प्रकृत पद्य में तृतीय पाद में प्रयुक्त ‘सुष्टुतः’ पद भी साधु नहीं है; यतः यहाँ पर ‘स्तुतः’ के साथ प्रयुक्त ‘सु’ शब्द की ‘सुः पूजायाम्’ (पा० सू०-१.४.१४) से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है, जिसके कि उपसर्ग के बाधक होने से उपसर्ग को निमित्त मानकर होने वाला षत्व भी नहीं होगा; फलस्वरूप शुद्ध स्वरूप ‘सुस्तुतः’ होगा, ‘सुष्टुतः’ नहीं होगा ।

एवमेव तृतीय पाद में ही प्रयुक्त ‘श्रेयम्’ पद भी अशुद्ध है; क्योंकि ‘मुक्तिः कैवल्यनिर्वाणश्रेयोनिःश्रेयसामृतम्’ (अमरकोश) के अनुसार श्रेयस् शब्द के नपुँसक लिङ्ग होने से उसका शुद्ध स्वरूप ‘श्रेयः’ होगा, ‘श्रेयं’ नहीं होगा; फल-स्वरूप प्रकृत में श्रेयमिच्छद्धिः के स्थान पर ‘श्रेय इच्छद्धिः’ शुद्ध स्वरूप होगा ।

एवमेव (‘शरणं गृहरक्षित्रोः’ (अमरकोश) के अनुसार ‘शरण’ शब्द के नपुँसक लिङ्ग होने के फलस्वरूप साधु प्रयोग ‘शरणमस्तु नः’ होगा; ‘शरणोऽस्तु नः’ नहीं होगा ॥११॥

एकाङ्गुल्या विनिर्दिश्य गोपीं गोपोऽब्रवीदिदम् ।

कृष्णः सर्पे वसत्यत्र कुञ्जे रात्रौ न गम्यताम् ॥१२॥

भावार्थ— किसी गोप ने एक अंगुली से निर्देश करके गोपी से कहा कि इस कुञ्ज में काला सर्प निवास करता है; अतः रात्रि के समय वहाँ मत जाना ॥

व्याकरण— उपर्युक्त श्लोक में प्रथमतः प्रयुक्त ‘एकाङ्गुल्या’ पद के स्थान पर शुद्ध प्रयोग ‘एकाङ्गुलेन’ होगा; यतः ‘एकाङ्गुल्या’ शब्द में तत्पुरुष समास होने के कारण ‘तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्घचाव्ययादेः’ (पा० सू०-५.४.८६) से नित्य समासान्त अच् प्रत्यय होता है ।

एवमेव ‘कृष्णः सर्पः’ भी अशुद्ध पाठ है; यतः इस विग्रहवाक्य में ‘विशेषणं विशेष्येण बहुलम्’ (पा० सू०-२.१.५७) सूत्र में बहुल् ग्रहण होने के परिणामस्वरूप जातिविशेष सर्प के अर्थ में नित्य समास होने से शुद्ध स्वरूप ‘कृष्णसर्पः’ होगा । गोपादि प्रसंगवशात् भगवान् कृष्ण अर्थ विवक्षित होने पर ‘कृष्णः सर्पः’ प्रयोग भी किया जा सकता है ॥१२॥

निमन्त्रयित्वा सच्छिष्यान् प्रत्येकात्पृष्ठवान् गुरुः ।

द्वेऽशुद्धी शब्दवेत्ता यः सोऽत्र वाक्ये प्रदर्शयेत् ॥१३॥

भावार्थ— अपने सुयोग्य शिष्यों को समीप बुलाकर गुरु ने प्रत्येक शिष्य से पूछा कि इस वाक्य में दो अशुद्धियाँ हैं । जो शिष्य स्वयं को शब्द-वेत्ता समझता है, वह उन अशुद्धियों को प्रदर्शित करे ॥

व्याकरण— उपर्युक्त पद्य में प्रथमतः पठित ‘निमन्त्रयित्वा’ पद अशुद्ध है; क्योंकि नि उपसर्गपूर्वक णिप्रत्ययान्त ‘मन्त्र’ धातु से ‘क्त्वा’ प्रत्यय होने के पश्चात् ‘समासेऽनव्यूर्वे क्त्वो ल्यप्’ (पा० सू०-७.१.३७) से क्त्वा के स्थान पर नित्य ल्यप् आदेश होता है; ऐसी स्थिति में शुद्ध स्वरूप ‘निमन्त्र्य’ होगा, ‘निमन्त्रयित्वा’ नहीं होगा ।

इसी प्रकार पञ्चम्यन्त एवं अव्ययीभाव होने के कारण साधु होते हुये भी ‘प्रत्येकात्’ पद का यहाँ प्रयोग समीचीन नहीं है; यतः प्रकृत प्रसंग में ‘प्रत्येकात्’ पद प्रश्नक्रिया का विशेषण है; फलस्वरूप कर्म कारक होने के कारण ‘प्रत्येक’ शब्द का द्वितीयान्त स्वरूप ‘प्रत्येकं’ ही यहाँ समीचीन प्रयोग होगा,

‘प्रत्येकात्’ समीचीन प्रयोग नहीं होगा ।

एवमेव प्रकृत श्लोक के तृतीय पाद में पठित ‘द्वेऽशुद्धी’ पद भी अशुद्ध है; क्योंकि एदन्त द्विवचनान्त ‘द्वे’ शब्द की ‘ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्’ (पा० सू०-१.१.११) सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा होने के फलस्वरूप ‘प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्’ (पा० सू०-६.१.१२५) से प्रकृतिभाव होने के कारण शुद्ध स्वरूप ‘द्वे अशुद्धी’ होता है ।

एवमेव तृतीय पाद में ही पठित ‘शब्दवेत्ता’ प्रयोग भी साधु नहीं है, यतः ‘शब्दस्य वेत्ता’ इस विग्रह की स्थिति में ‘तृजकाभ्यां कर्तरि’ (पा० सू०-२.२.१५) से षष्ठी समास का निषेध होने के फलस्वरूप उपर्युक्त विग्रहवाक्य ‘शब्दस्य वेत्ता’ ही साधु होगा, ‘शब्दवेत्ता’ साधु प्रयोग नहीं होगा ॥१३॥

श्रुतिः मातासमा पूज्या तथा प्राणादपि प्रिया ।

एकादेव गुरोरत्र षड्भिश्छात्रैरधीयते ॥१४॥

भावार्थ— वेद माता के समान पूज्य तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय है; अतः एक ही गुरु से छः छात्र उसका अध्ययन कर रहे हैं ॥

व्याकरण— प्रकृत श्लोक के प्रथम पाद में पठित ‘मातासमा’ पद पूर्णतः असाधु है; क्योंकि ‘तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्’ (पा० सू०-२.३.७२) के विधानानुसार तुल्य अर्थ को ध्वनित करने वाले शब्दों के योग में तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति होती है । उपर्युक्त विधान के अनुसार प्रकृत प्रकरण में भी तुल्यार्थक ‘सम’ शब्द के साहचर्य में ‘मातृ’ शब्द से तृतीया या षष्ठी विभक्ति होने के परिणामस्वरूप ‘मात्रा समा’ या ‘मातुः समा’ प्रयोग ही साधु होगा, ‘मातासमा’ साधु नहीं होगा । इसके अतिरिक्त ‘पूर्वसदृश-समोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्षणैः’ (पा० सू०-२.१.३१) से समास करने की दशा में विकल्पेन ‘मातृसमा’ प्रयोग की भी सिद्धि का जा सकती है । एव-मेव षष्ठी विभक्ति का आश्रयण कर ‘षष्ठी’ (पा० सू०-२.२.८) से समास होने पर भी विकल्पेन ‘मातृसमा’ रूप की सिद्धि भी सम्भव है; परन्तु किसी भी दशा में ‘मातासमा’ प्रयोग की सिद्धि सम्भव नहीं है ।

एवमेव प्रकृत श्लोक के द्वितीय पाद में पठित ‘प्राणादपि’ प्रयोग भी

असाधु ही है; यतः ‘पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः’ (अमरकोश) वचनानुसार असुवाची ‘प्राण’ शब्द नित्य बहुवचनान्त है; बहुवचन में साधु प्रयोग ‘प्राणेभ्योऽपि’ होगा, ‘प्राणादपि’ प्रयोग असाधु ही होगा ।

एवमेव तृतीय पाद में पठित ‘एकादेव’ भी अशुद्ध प्रयोग है; क्योंकि संख्यावाचक ‘एक’ शब्द के सर्वनाम का बोधक होने के कारण पञ्चमी विभक्ति में ‘ङसिङ्ग्यो स्मात्स्मिनौ’ (पा० सू०-७.१.१५) सूत्र से डंस् विभक्ति के स्थान पर ‘स्मात्’ आदेश होने से शुद्ध स्वरूप ‘एकस्मात्’ होने से ‘एकस्मादेव’ समीचीन प्रयोग होगा, ‘एकादेव’ समीचीन प्रयोग नहीं होगा ॥१४॥

आयुर्वेदो चिकित्सायाः स्मृता श्रेष्ठतमा विधिः ।

तत्त्वज्ञैः दिवानिद्रा कथिता हानिकारका ॥१५॥

भावार्थ— आयुर्वेद चिकित्साशास्त्र की सर्वश्रेष्ठ विधि बताई गई है । चिकित्साशास्त्र के तत्त्वज्ञ विद्वानों ने दिन में शयन को सब प्रकार से हानिकारक बताया है ॥

व्याकरण— प्रकृत श्लोक में प्रथमतः पठित ‘आयुर्वेदो चिकित्सायाः’ पद अशुद्ध है; यतः यहाँ पर ‘आयुर्वेदो’ पद के पश्चात् ‘चिकित्सायाः’ पद के प्रारम्भ में ‘हश्’ प्रत्याहारस्थ वर्ण न होने के कारण ‘हशि च’ (पा० सू०-६.१.११४) से विसर्ग के स्थान पर उत्त्व ही नहीं होगा; फलस्वरूप गुण भी नहीं होगा । पाणिनीय व्याकरण के अनुसार यहाँ पर ‘विसर्जनीयस्य सः’ (पा० सू०-८.३.३४) से ‘आयुर्वेदः’ के विसर्ग को सत्त्व तथा ‘स्तोः श्चुना श्चुः’ (पा० सू०-८.४.४०) से आदेशभूत ‘स’ को श्चुत्व (श्) होकर शुद्ध स्वरूप ‘आयुर्वेदश्चिकित्सायाः’ होगा ।

एवमेव द्वितीय पाद में स्त्रीलिङ्ग के रूप में ‘विधि’ शब्द का प्रयोग किया गया है, जो कि पूर्णतः असाधु है; यतः हिन्दी भाषा में भले ही ‘विधि’ शब्द का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में होता हो; किन्तु संस्कृत भाषा में तो विधि शब्द ‘क्यन्तो घुः’ (लिङ्गानुशासन-४१) इस पाणिनीय सूत्र के अनुसार पुँलिङ्ग ही पठित है । इस प्रकार ‘विधिः’ पद के पुँलिङ्ग होने से उसके विशेषण के रूप में प्रयुक्त को पद भी पुँलिङ्ग ही होना चाहिये । फलतः कवि को ‘स्मृता श्रेष्ठतमा विधिः’ न कहकर ‘स्मृतः श्रेष्ठतमो विधिः’ कहना चाहिये था; क्योंकि यही शुद्ध प्रयोग होगा ।

इसी प्रकार तुरीय पाद में प्रयुक्त ‘हानिकारका’ पद भी असाधु है; क्योंकि ‘तृजकाभ्यां कर्त्तरि’ (पा० सू०-२.२.१५) सूत्र से षष्ठी समास का निषेध होने के कारण साधु रूप ‘हानेः कारिका’ होगा, ‘हानिकारका’ नहीं होगा । ‘तत्रयोजको हेतुश्च’ (पा० सू०-१.४.५४) इस सौत्रप्रयोग के कारण षष्ठी समास के निषेध को यदि अनित्य स्वीकार कर लिया जाय तो भी ‘प्रत्यय-स्थात्कात्पूर्वस्यात् इदाप्यसुपः’ (पा० सू०-७.३.४४) सूत्र से इत्वविधान नित्य होने के कारण ‘हानिकारिका’ भी साधु प्रयोग होगा । इस प्रकार ‘हानिकारिका’ या ‘हानेः कारिका’ ही साधु प्रयोग होगा, ‘हानिकारका’ कथमपि साधु प्रयोग नहीं होगा ॥१५॥

प्रासादपतितो बालो पादखञ्जः बभौ क्षणात् ।
भर्तृस्मरणमात्रेण भृत्योऽभूद्यविह्वलः ॥१६॥

भावार्थ— महल से गिर जाने के कारण बालक शीघ्र ही पैर से लँगड़ा हो गया । चूँकि सेवक की असावधानी से ही ऐसा हुआ; अतः वह सेवक अपने स्वामी के स्मरणमात्र से ही भयभीत हो गया ॥

व्याकरण— प्रकृत श्लोक में प्रयुक्त ‘प्रासादपतितः’ पद असाधु है; यतः पाणिनीय अष्टाध्यायी के द्वितीय अध्यायस्थ अङ्गतीसवें सूत्र ‘अपेतापोढ-मुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः’ में उल्लिखित अल्पशः पद के कारण मात्र अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित एवं अपत्रस्त शब्द के साथ ही पञ्चम्यन्तः पदों का समास होता है । इसी नियम का अनुसरण करते हुये वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी के प्रणेता भट्टोजिदीक्षित ने भी ‘प्रासादात्पतितः’ इस विग्रहवाक्य में समास नहीं किया है । निष्कर्ष यह है कि ‘प्रासादात् पतितः’ ही साधु प्रयोग होगा, ‘प्रासादपतितः’ साधु प्रयोग नहीं होगा ।

एवमेव द्वितीय पाद में पठित ‘पादखञ्जः’ पद भी असाधु ही है; यतः ‘येनाङ्गविकारः’ (पा० सू०-२.३.२०) से तृतीया विभक्ति होकर ‘पादेन खञ्जः’ रूप की निष्पत्ति होती है । यहाँ समासविधायक सूत्र ‘तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन’ (पा० सू०-२.१.३०) की प्राप्ति ही नहीं होती; फलतः ‘पादखञ्जः’ प्रयोग के साधु होने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

एवमेव तृतीय पाद में पठित ‘भर्तृस्मरणमात्रेण’ पद भी असाधु ही है; यतः ‘अधीर्गर्थदयेशां कर्मणि’ (पा० सू०-२.३.५२) से षष्ठी होने के कारण शुद्ध

रूप 'भर्तुः स्मरणमात्रेण' होगा; 'भर्तृस्मरणमात्रेण' नहीं होगा। साथ ही 'न निर्धारणे' (पा० सू०-२.२.१०) के साथ पठित 'प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यत इति वाच्यम्' वार्तिक द्वारा समास का निषेध होने से भी श्लोकोक्त प्रयोग की निष्पत्ति कथमपि सम्भव नहीं हो सकती ॥१६॥

वेदज्ञानं विना विप्रवदनं नैव शोभते ।

अम्भोहीनः सरो यद्वत् स्मृतिकर्तुरयं मतः ॥१७॥

भावार्थ— वेदों के ज्ञान से रहित ब्राह्मणों का मुख ठीक उसी प्रकार शोभा को नहीं प्राप्त कर पाता, जिस प्रकार कि कमलविहीन तालाब सुशोभित नहीं होता । यह स्मृतिकर्ता का मत है ॥

व्याकरण— उपर्युक्त श्लोक के तृतीय पाद में पठित 'सरः' शब्द 'कासारः सरसी सरः' (अमरकोश) इस वचन के अनुसार नपुँसक लिङ्गी है और इसके नपुँसक लिङ्गी होने से इस शब्द का विशेषण भी नपुँसक लिङ्ग वाला ही होगा; पुँलिङ्ग नहीं होगा । अतएव शुद्ध स्वरूप 'अम्भोहीनं सरः' होगा, 'अम्भोहीनः सरः' शुद्ध रूप नहीं होगा । एवमेव 'अम्भसा हीनं सरः' भी साधु रूप होगा; क्योंकि 'ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः' (पा० सू०-६.३.३) से तृतीया के लोप का निषेध हो जायगा ।

इसी प्रकार श्लोक के चतुर्थ पाद में पठित 'स्मृतिकर्तुः' भी अशुद्ध ही है; क्योंकि 'तृजकाभ्यां कर्तरि' (पा० सू०-२.२.१५) से षष्ठी समास का निषेध होने के कारण शुद्ध रूप 'स्मृतेः कर्तुः' होगा, 'स्मृतिकर्तुः' नहीं होगा । कतिपय वैयाकरणों के मतानुसार पाणिनीयसूत्र १.४.३० में प्रयुक्त समस्त पद 'जनिकर्तुः' पद को दृष्टिगत रखते हुये षष्ठी समास-निषेध को यदि अनित्य स्वीकार कर लिया जाय तो 'स्मृतेः कर्तुः' और 'स्मृतिकर्तुः'— ये दोनों ही प्रयोग साधु सिद्ध होते हैं ।

एवमेव चतुर्थ पाद में पठित 'अयं मतः' भी अशुद्ध है; क्योंकि 'नपुँसके भावे त्तः' (पा० सू०-३.३.२१४) द्वारा सम्मत्यर्थक 'मत' शब्द के नित्य नपुँसक लिङ्गी होने से 'अयं मतः' के स्थान पर शुद्ध प्रयोग 'इदं मतम्' होगा । फिर भी 'त्तः' प्रत्यय को यदि कर्म में स्वीकार किया जाय तो 'अयं मतः' प्रयोग ही साधु स्वीकार किया जा सकता है ॥१७॥

अधीती दर्शनस्यायमधिशेते कटे वटुः ।
अन्याशां सम्परित्यज्य भगवत्पादमाश्रितः ॥१८॥

भावार्थ— दर्शनशास्त्र का अध्येता यह बालक चटाई पर शयन करता है। अन्य लोगों की आशाओं का परित्याग कर इसने भगवान् के श्रीचरणों का आश्रय ग्रहण किया है॥

व्याकरण— उपर्युक्त श्लोक में प्रथमतः पठित ‘अधीती दर्शनस्य’ पाठ असाधु है; क्योंकि ‘सप्तम्यधिकरणे च’ (पा० सू०-२.३.३६) पर पठित भाष्यवार्त्तिक ‘क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्’ से दर्शनरूप कर्म में सप्तमी-विधान होने से साधु स्वरूप ‘अधीती दर्शने’ होगा।

एवमेव ‘अधिशेते कटे’ भी साधु प्रयोग नहीं है; क्योंकि शयनार्थक शीड़धातु के आधारस्वरूप ‘कट’ शब्द की ‘अधिशीडस्थासां कर्म’ (पा० सू०-१.४.४६) कर्मसंज्ञा होकर ‘कर्मणि द्वितीया’ (पा० सू०-२.३.२) से द्वितीया होकर साधु स्वरूप ‘कटमधिशेते’ होगा।

एवमेव तृतीय पाद में पठित ‘अन्याशां’ पद भी असाधु है; क्योंकि ‘अन्य’ शब्द के पश्चात् ‘आशा’ शब्द की उपस्थिति होने के फलस्वरूप ‘अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुग्धशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषुः’ (पा० सू०-६.३.९९) से ‘दुक्’ का आगम होने पर साधु प्रयोग ‘अन्यदाशां’ होगा ॥१८॥

चिरं प्रतीक्षितोऽस्माभिः पुण्यदृष्टोऽधुना भवान् ।

प्रदर्शयतु पद्येऽस्मिन् त्रुटीनेकाधिकान् मम ॥१९॥

भावार्थ— चिरकाल से हमने आपकी प्रतीक्षा की है, सौभाग्य से आपके दर्शन हुये। आप कृपा कर मेरे इस पद्य में एक से अधिक त्रुटियों का निर्देश करें॥

व्याकरण— प्रकृत श्लोक के द्वितीय पाद में पठित ‘पुण्यदृष्टः’ प्रयोग साधु नहीं है; हेतु के अर्थ में तृतीया विभक्ति होने के कारण ‘कर्तृकरणे कृता बहुलम्’ (पा० सू०-२.१.३२) से समाप्त का निषेध होने के फलस्वरूप ‘पुण्येन दृष्टः’— यह विग्रहवाक्य ही रहेगा, समस्त पद ‘पुण्यदृष्टः’ नहीं होगा। हाँ; यदि तृतीया में करणत्व की विवक्षा मानी जाय तो उपर्युक्त ‘पुण्यदृष्टः’

प्रयोग भी साधु स्वीकार किया जा सकता है।

एवमेव चतुर्थ पाद में पठित ‘त्रुटीनेकाधिकान् मम’ भी असाधु प्रयोग ही है, साधु प्रयोग नहीं है; क्योंकि ‘स्त्रियां मात्रा त्रुटिः’ (अमरकोश) के अनुसार ‘त्रुटि’ शब्द स्त्रीलिङ्ग है। ऐसी स्थिति में स्त्रीलिङ्ग त्रुटि शब्द के द्वितीया बहुवचन का रूप ‘त्रुटीः’ होगा और उसका विशेषण भी तदनुरूप ही होगा। परिणामतः साधु प्रयोग ‘त्रुटीरेकाधिका मम’ होगा— यह स्पष्ट है ॥१९॥

तिरोभूत्वा स्थिताः काश्चिद् एषु पद्योष्वशुद्धयः ।
अनर्थमैकमप्यत्र किन्तु श्लोकं न विद्यते ॥२०॥

भावार्थ— इन पद्यों में कई अशुद्धियाँ छुपी पड़ी हैं। यहाँ एक अनर्थ यह भी है कि यह श्लोक ही नहीं है ॥

व्याकरण— प्रकृत पुस्तक के इस अन्तिम पद्य में प्रथमतः पठित ‘तिरोभूत्वा’ पद असाधु है; क्योंकि उक्त पद में पूर्वपद के रूप में प्रयुक्त ‘तिरस्’ अव्यय है; अतः इसका उत्तरपद के रूप में पठित ‘भूत्वा’ के साथ नित्य समास होने के कारण ‘समासेऽनज्यूर्वें कत्वो ल्यप्’ (पा० सू०-७.१. ३७) से ‘भूत्वा’ के ‘कत्वा’ प्रत्यय के स्थान पर नित्य ‘ल्यप्’ आदेश होने के कारण साधु स्वरूप ‘तिरोभूय’ होगा; ‘तिरोभूत्वा’ असाधु होगा।

एवमेव तृतीय पाद में पठित ‘अनर्थम्’ भी असाधु ही है; क्योंकि बहुत्रीहि समास अभिप्रेत होने के कारण ‘उरःप्रभृतिभ्यः कप्’ (५.४.१५१) सूत्र के साथ पठित ‘अर्थन्निबः’ वार्तिक से नित्य ‘कप्’ प्रत्यय होने के फलस्वरूप साधु स्वरूप ‘अनर्थकम्’ होगा; ‘अनर्थम्’ नहीं होगा।

इसी प्रकार पद्य के अन्तिम पाद में पठित ‘श्लोकं’ पद भी असाधु ही है; यतः ‘श्लोक’ शब्द ‘पद्ये यशसि च श्लोकः’ (अमरकोश) के अनुसार पुँलिङ्ग है। एवमेव संघातार्थक ‘श्लोकृ’ धातु से ‘घज्’ प्रत्यय होकर निष्पत्र ‘श्लोक’ शब्द का परिगणन ‘घजबन्तः’ इस पाणिनीय लिङ्गानुशासनस्थ सूत्र के द्वारा भी पुँलिङ्गाधिकार में ही किया गया है; अतः प्रकृत में साधु प्रयोग ‘श्लोकः’ ही होगा, ‘श्लोकं’ नहीं होगा ॥२०॥

अथ गुप्ताशुद्धिवाक्यानि

१. वाङ्मनोऽतीताय ब्रह्मणे नमः ।

वाक्यार्थ— वाणी तथा मन से परे उस ब्रह्म को मेरा नमस्कार है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में साधु प्रयोग ‘वाङ्मनसातीताय’ होगा, ‘वाङ्मनोऽतीताय’ नहीं होगा; यतः ‘वाङ्मनस्’ शब्द का ‘अचतुरविचतुर-सुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहक्सामिवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारग्वोर्षष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रि-न्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषगर्जुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोप-शुनगोष्ठश्वाः’ (पा० सू०-५.४.७७) से अच् प्रत्ययान्त निपातन होता है ॥१॥

२. वाक्स्तम्भनमन्त्रोऽस्माभिर्जप्यः ।

वाक्यार्थ— वाणी को स्तम्भित करने वाला मन्त्र हमें जपना चाहिये ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में पठित ‘जाप्यः’ पद असाधु है; क्योंकि ‘अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा’ के अनुसार ‘जप्’ शब्द में उपधाभूत ‘अ’ के पश्चात् पवर्गीय ‘प्’ की उपस्थिति होने के कारण ‘पोरदुपधात्’ (पा० सू०-३.१.९८) से ‘ण्यत्’ प्रत्यय के अपवादस्वरूप ‘यत्’ प्रत्यय का विधान होने के कारण वृद्धिविधान न होने के फलस्वरूप साधु स्वरूप ‘जप्यः’ होगा; अतः यहाँ प्रयुक्त ‘जाप्यः’ पद असाधु है ॥२॥

३. स्त्रीपुंसोः स्नेह एव सर्वसुखेभ्यो विशिष्यते ।

वाक्यार्थ— स्त्री-पुरुष का परस्पर स्नेह सभी प्रकार के सुखों का मूल है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में भी प्रथमतः पठित ‘स्त्रीपुंसोः’ पद साधु नहीं है; यतः ‘स्त्रीपुंस्’ शब्द का ‘अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहक्सामिवाङ्मन-साक्षिभ्रुवदारग्वोर्षष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रि-न्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषगर्जुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः’ (पा० सू०-५.४.७७) से अच् प्रत्ययान्त निपातन होता है । अतः अच् प्रत्ययान्त ‘स्त्रीपुंस्’ शब्द का षष्ठी विभक्ति में शुद्ध स्वरूप ‘स्त्रीपुंसयोः’ होगा, ‘स्त्रीपुंसोः’ नहीं होगा ॥३॥

४. सकुटुम्बाय ते स्वस्ति ।

वाक्यार्थ— सपरिवार तुम्हारा कल्याण हो ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रथमतः पठित ‘सकुटुम्बाय’ पद असाधु है; यतः ‘सहस्य सः संज्ञायाम्’ (पा० सू०-६.३.७८) से ‘सह’ को होने वाला ‘स’ आदेश ‘प्रकृत्याशिषि’ (पा० सू०-६.३.८३) के अनुसार आशीर्वाद के प्रसङ्ग में नहीं होता । इस प्रकार स्पष्ट है कि आशीर्वाद अर्थ विवक्षित होने पर ‘सह’ शब्द अपने प्रकृत रूप में ही रहता है । अतः प्रकृत में वाक्य का शुद्ध स्वरूप ‘सहकुटुम्बाय ते स्वस्ति’ होगा, ‘सकुटुम्बाय ते स्वस्ति’ नहीं होगा ॥४॥

५. यो राजा शत्रुं न विजगीषति स ‘कातर’ इत्युच्यते ।

वाक्यार्थ— जो राजा अपने शत्रु को जीतने की इच्छा नहीं रखता, वह ‘भीरु’ कहा जाता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘विजगीषति’ असाधु है; यतः ‘विपराभ्यां जेः’ (पा० सू०-१.३.१९) के विधानानुसार ‘वि’ उपसर्गपूर्वक ‘जि’ धातु के आत्मनेपदी होने के पश्चात् उसी धातु से सन् प्रत्यय होने सत्रन्त धातु के भी ‘पूर्ववत्सनः’ (पा० सू०-१.३.६२) से यथापूर्व आत्मनेपदी ही बने रहने के कारण साधु स्वरूप ‘विजगीषते’ होगा, ‘विजगीषते’ नहीं होगा ॥५॥

६. नौ देहि पुस्तकमेतत् ।

वाक्यार्थ— यह पुस्तक हमें दीजिये ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रथमतः पठित ‘नौ’ पद असाधु है; क्योंकि ‘अनुदातं सर्वमपादादौ’ (पा० सू०-८.१.१८) नियमानुसार वाक्या-रम्भ में कहीं भी ‘आवाभ्याम्’ के स्थान पर अनुदात ‘नौ’ आदेश नहीं होता । अतः प्रकृत में साधु प्रयोग ‘आवाभ्याम्’ ही होगा, ‘नौ’ साधु प्रयोग नहीं होगा ॥६॥

७. एषा दशदिवसानन्तरं पुत्रं प्रसोष्यते ।

वाक्यार्थ— यह स्त्री दस दिनों बाद पुत्र उत्पन्न करेगी ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में पठित ‘दशदिवसानन्तरं’ पद अशुद्ध है; यतः ‘दशदिवस’ शब्द में ‘सङ्घापूर्वो द्विगुः’ (पा० सू०-२.१.५२) से द्विगु

समास होने के कारण ‘द्विगोः’ (पा० सू०-४.१.२१) सूत्र से डीप् होने के फलस्वरूप शुद्ध स्वरूप ‘दशदिवसी’ होगा, जिसका आगे पठित ‘अनन्तरम्’ पद के साथ यण् सन्धि होने पर परिनिष्ठित रूप ‘दशदिवस्यनन्तरम्’ होगा ।

एवमेव इस वाक्य में क्रियापद के रूप में प्रयुक्त लृट् लकार का ‘प्रसो-
ष्टे’ भी अशुद्ध है; क्योंकि ‘दशदिवसानन्तरं’ पद से अनद्यतन भविष्यत्
विवक्षित है । अतः ‘अनद्यतने लुट्’ (पा० सू०-३.३.१५) से लुट् लकार,
प्रथम पुरुष, एकवचन का ‘प्रसोता’ या ‘प्रसविता’ ही शुद्ध प्रयोग होगा ॥७॥

८. योऽद्य विहरति स एव तदापि अविहरत् ।

वाक्यार्थ— जो आज विहार कर रहा है, वही उस समय भी विहार कर रहा था ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘अविहरत्’ अशुद्ध प्रयोग है; यतः अट् का आगम धातु के अव्यवहित पूर्व में ही होता है । इसलिये यहाँ ‘वि’ उपसर्ग अट् आगम के पूर्व ही संयुक्त होगा, बाद में नहीं संयुक्त होगा । फल-
स्वरूप शुद्ध प्रयोग ‘व्यहरत्’ होगा, ‘अविहरत्’ नहीं होगा ॥८॥

९. एतस्य भूषणं मुष्णीहीति मा वोचः ।

वाक्यार्थ— ‘इसके आभूषण को चुरा लो’ ऐसा मत कहें ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में पठित क्रियापद ‘मुष्णीहि’ असाधु प्रयोग है;
यतः क्रयादि गण में परिगणित स्तेयार्थक ‘मुष’ धातु से ‘क्रयादि-भ्यः श्ना’
(पा० सू०-३.१.८१) से ‘श्ना’ प्रत्यय होने के पश्चात् ‘मुष + श्ना + हि’ इस
स्थिति में हल् के पश्चात् यदि ‘श्ना’ और उसके पश्चात् ‘हि’ हो तो ‘हलः श्नः
शानज्ञाम्’ (पा० सू०-३.१.८) से ‘श्ना’ के स्थान पर ‘शानच्’ आदेश हो
जाता है; एवम् ‘अतो हे:’ (पा० सू०-६.४.१०५) से ‘हि’ का लुक् (लोप)
हो जाने पर शुद्ध स्वरूप ‘मुषाण’ की निष्पत्ति होती है ॥९॥

१०. भवान् कदानीं यास्यति ? मया तु परश्वो गमिष्यते ।

वाक्यार्थ— आप कब जायेंगे ? मैं तो परसो जाऊँगा ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘कदानीं’ प्रयोग अशुद्ध है, इसके

स्थान पर शुद्ध प्रयोग 'कदा' होगा; यतः 'दानीं च' (पा० सू०-५.३.१८) एवं 'तदो दा च' (पा० सू०-५.३.१९)— इन दोनों सूत्रों से होने वाला 'दानी' प्रत्यय मात्र 'इदम्' एवं 'तद्' शब्दों से ही होता है, 'किम्' शब्द से नहीं होता ।

एवमेव द्वितीय क्रियापद के रूप में पठित 'गमिष्यते' भी अशुद्ध प्रयोग है, इसके स्थान पर शुद्ध प्रयोग 'गंस्यते' होगा; यतः 'गमेरिट् परस्मैपदेषु' (पा० सू०-७.२.५८) से गमनार्थक 'गम्' धातु से 'इट्' का आगम केवल परस्मैपद में ही होता है, आत्मनेपद में नहीं होता; जबकि प्रकृत में प्रयोग आत्मनेपद का है; अतः यहाँ इट् का आगम न होने से लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में 'गंस्यते' बनेगा, 'गमिष्यते' नहीं बनेगा । हाँ; 'परश्वः' पद प्रयुक्त होने के परिणामस्वरूप अनधितन भविष्यत् की विवक्षा होने के कारण 'अन्यद्यतने लुट्' (पा० सू०-३.३.१५) से लुट् लकार की प्रवृत्ति होने से प्रथम पुरुष एकवचन में निष्पत्र रूप 'गन्ता' का प्रयोग भी किया जा सकता है ॥१०॥

११. रे क्रोष्टः किमिति रोरवीषि ?

वाक्यार्थ— हे शृगाल ! तू क्यों रुदन कर रहा है ?

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त 'क्रोष्टः' पद असाधु है; यतः 'सर्व-नामस्थाने चासम्बुद्धौ' (पा० सू०-६.४.८) सूत्र की अनुवृत्ति होने से 'तृज्वल्क्रोष्टः' (पा० सू०-७.१.९५) सूत्र की प्रवृत्ति सम्बुद्धिभिन्न सर्वनाम-स्थान में ही होती है । फलस्वरूप 'क्रोष्टु' शब्द के स्थान पर 'क्रोष्ट' शब्द का प्रयोग सम्बोधन से भिन्न स्थल पर ही होता है, सम्बोधन में नहीं होता । आशय यह है कि यहाँ पठित वाक्य में सम्बोधन का प्रसङ्ग होने के कारण उकारान्त 'क्रोष्टु' शब्द का 'हस्वस्य गुणः' (पा० सू०-७.३.१०८) से गुण होकर सम्बोधन एकवचन में निष्पत्र रूप 'क्रोष्टे' होगा; 'क्रोष्टः' नहीं होगा ॥११॥

१२. चिररात्राय लालनपालनतत्परौ मातृपितरौ को न सुस्मृर्ति ?

वाक्यार्थ— देर रात्रिपर्यन्त (पुत्र के) लालन-पालन (देख-भाल) में तत्पर माता-पिता को कौन याद नहीं रखेगा ?

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में 'मातृपितरौ' पद साधु नहीं है; यतः योनि-

सम्बन्धवाचक ऋदन्त ‘मातृ’ शब्द के बाद ऋदन्त ‘पितृ’ शब्द की उपस्थिति होने से द्वन्द्व समाप्त होने पर ‘आनङ्ग्रहतो द्वन्द्वे’ (पा० सू०-६.३.२५) से मातृ शब्द के ऋकार को आनङ्ग आदेश होकर ‘मातापितरौ’ शब्द निष्पत्त होता है; ‘मातृपितरौ’ नहीं ।

इसी प्रकार वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘सुस्मृष्टिं’ भी साधु नहीं है; यतः ‘ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः’ (पा० सू०-१.३.५७) के विधानानुसार सन्त्रन्त ‘स्मृ’ धातु के आत्मनेपदी होने के कारण साधु स्वरूप ‘सुस्मृष्टें’ होगा, ‘सुस्मृष्टिं’ नहीं होगा ॥१२॥

१३. युष्माकं गृहा जीर्णाः सन्ति अनयोर्गृहौ तु नूतनौ स्तः ।

वाक्यार्थ— आप लोगों के घर तो पुराने हैं, इन दोनों के घर नये हैं ।

व्याकरण— ‘गृहाः पुंसि च भूम्न्येव’ (अमरकोश) के अनुसार पुँलिङ्गं ‘गृह’ शब्द सर्वदा बहुवचन ही होता है; अतएव यहाँ प्रयुक्त ‘गृहौ तु नूतनौ स्तः’ साधु नहीं है । साधु प्रयोग तो पुँलिङ्ग स्वीकार करने पर ‘गृहाः तु नूतनाः सन्ति’ अथवा नपुंसक लिङ्ग स्वीकार करने पर ‘गृहे तु नूतने स्तः’ होगा ॥१३॥

१४. कैषाप्सरा नृत्यति गानसक्ता ?

वाक्यार्थ— यह कौन अप्सरा गायन करती हुई नृत्य कर रही है ?

व्याकरण— ‘स्त्रियां बहुस्वप्सरसः’ (अमरकोश) के अनुसार ‘अप्सरस्’ शब्द के स्त्रीलिङ्ग के साथ-साथ नित्य बहुवचनान्त होने से ‘का एता अप्स-रसः नृत्यन्ति गानसक्ताः’ साधु वाक्य होगा, उपर्युक्त वाक्य कथमपि साधु नहीं होगा ॥१४॥

१५. किमित्यस्या वधोः केशेषु मलीमसता विभाव्यते ?

वाक्यार्थ— इस वधू के केशों में इनी मलिनता क्यों है ?

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘वधोः’ शब्द असाधु है; क्योंकि नदीसंज्ञक ‘वधू’ शब्द को ‘आणन्द्याः’ (पा० सू०-७.३.११२) से आट् का आगम होने के पश्चात् षष्ठी विभक्ति के एकवचन में साधु शब्द ‘वध्वाः’ होगा, ‘वधोः’ नहीं होगा ॥१५॥

१६. आर्यावर्ते स्त्रियः प्रायशः स्वपत्या समं बहिर्न पर्यटन्ति ।

वाक्यार्थ— आर्यावर्त में स्त्रियाँ प्रायः अपने पतियों के साथ बाहर नहीं घूमतीं ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त 'स्वपत्या' शब्द साधु नहीं है, साधु शब्द 'स्वपतिना' होगा; यतः समास्त 'पति' शब्द को 'पतिः समास एव' (पा० सू०-१.४.८) से घिसंज्ञा होने के कारण 'आडो नाऽस्त्रियाम्' (पा० सू०-७.३.१२०) के विधानानुसार तृतीया विभक्ति के एकवचन में 'आड़' को 'ना' आदेश होता है ॥१६॥

१७. एते जम्बूफलानि विक्रीणन्ते ।

वाक्यार्थ— ये जामुन के फल बिक रहे हैं ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद 'विक्रीणन्ते' अशुद्ध है; क्योंकि 'क्रीञ्' धातु से प्रथम पुरुष के बहुवचन में प्राप्त आत्मनेपदी 'झ' प्रत्यय को 'आत्मनेपदेष्वनतः' (पा० सू०-७.१.५) से विधीयमान 'अन्त' आदेश के अपवादस्वरूप 'अत्' आदेश होने पर शुद्ध स्वरूप 'विक्रीणते' होगा, 'विक्रीणन्ते' नहीं होगा ॥१७॥

१८. भवानेतानि किमिति न परिक्रीणाति ?

वाक्यार्थ— आप इन्हें क्यों नहीं खरीदते ?

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त परस्मैपदी क्रियाशब्द 'परिक्रीणाति' साधु नहीं है; यतः 'परि' उपसर्गपूर्वक 'क्रीञ्' धातु 'परिव्यवेभ्यः क्रियः' (पा० सू०-१.३.१८) के विधानानुसार आत्मनेपदी होगा, जिसके प्रथम पुरुष एकवचन में शुद्ध स्वरूप 'परिक्रीणीते' होगा, 'परिक्रीणाति' नहीं होगा ॥१८॥

१९. भवता पश्यताम्, पाठशालायां छात्राः पठन्ति ।

वाक्यार्थ— आप देखें, पाठशाला में छात्र पढ़ रहे हैं ।

व्याकरण— कर्मवाच्य के प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त 'पश्यताम्' क्रियापद अशुद्ध है; यतः दर्शनार्थक 'दृश्' धातु को 'पाद्राध्मास्थाम्नादाण्डृश्यर्तिसर्ति-शदसदां पिबजिप्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्थधौशीयसीदाः' (पा० सू०-७.३.७८) से विधीयमान 'पश्य' आदेश मात्र कर्तृवाच्य में ही होने के कारण यहाँ शुद्ध

स्वरूप ‘दृश्यताम्’ ही होगा, पश्यताम्’ नहीं होगा ॥१९॥

२०. एते छात्रा विशदं संस्कृतबोधं बिभ्रन्ति ।

वाक्यार्थ— ये छात्रगण विशाल संस्कृतज्ञान को धारण किये हुये हैं।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘बिभ्रन्ति’ अशुद्ध है; क्योंकि प्रथम पुरुष के बहुवचन में प्राप्त ‘झि’ के ‘झ’ को ‘अदृश्यस्तात्’ (पा० सू०-७.१.४) से ‘अत्’ आदेश होने के फलस्वरूप शुद्ध स्वरूप ‘बिभ्रति’ होगा ॥२०॥

२१. सुतरां शास्त्राणि पाठं पाठं कः को न सुखमबिभ्रत् ।

वाक्यार्थ— अच्छे शास्त्रों को बार-बार पढ़कर कौन सुखी नहीं होता ? (अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति सुख का अनुभव करता है) ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘कः को’ पद अशुद्ध है; क्योंकि ‘कस्कादिषु च’ (पा० सू०-८.३.४८) से ‘कः’ में स्थित विसर्ग को सत्त्व होकर शुद्ध स्वरूप ‘कस्को’ होगा, ‘कः को’ नहीं होगा ।

एवमेव क्रियापद ‘अबिभ्रत्’ भी अशुद्ध है; क्योंकि ‘अनद्यतने लड्’ (पा० सू०-३.२.१११) से प्राप्त लड् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन में शुद्ध स्वरूप ‘अबिभः’ होगा, ‘अबिभ्रत्’ नहीं होगा ॥२१॥

२२. पटोलस्य फलं मूलं छदः च रोगमवहन्ति ।

वाक्यार्थ— परवल का फल, मूल तथा पत्ते रोगों का विनाश करते हैं।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘छद’ शब्द के ‘छदः पुमान्’ (अमरकोश) के अनुसार पुँलिलङ्घ होने के कारण ‘छदः’ और ‘च’कार से समस्त प्रयुक्त पदों का समुच्चय होने के कारण बहुवचन में शुद्ध स्वरूप ‘अवघन्ति’ होगा, ‘अवहन्ति’ नहीं होगा ॥२२॥

२३. यस्तव गृहं परिष्करोति स एव मद्गृहमपि परिश्वकार ।

वाक्यार्थ— जो तुम्हारा घर साफ करता है, उसी ने मेरे घर को भी साफ किया ।

व्याकरण— उपर्युक्त पठित वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘परिश्वकार’ अशुद्ध है; यतः करणार्थक ‘कृ’ धातु से ‘सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे’ (पा० सू०-

६.१.१३७) से विधीयमान सुट् आगम अभ्यास का परवर्ती होगा; अतएव प्रकृत में शुद्ध स्वरूप 'परिचस्कार' होगा, 'परिश्वकार' नहीं होगा ।

२४. स द्वौ श्लोकौ विरच्य प्रेषितवान् ।

वाक्यार्थ— उसने दो श्लोकों की रचना कर भेजा ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त 'विरच्य' पद अशुद्ध है; यतः 'वि' उपसर्गपूर्वक चुरादि गण में पठित 'रच' धातु के पश्चाद्वर्ती 'णि' प्रत्यय को 'ल्यपि लघुपूर्वात्' (पा० सू०-६.४.५६) से 'अय्' आदेश होने के कारण शुद्ध स्वरूप 'विरचय्य' होगा, 'विरच्य' नहीं होगा ॥२४॥

२५. सूर्यः सदैवोष्णीभूतो भ्राम्यति ।

वाक्यार्थ— सूर्य सदैव गर्म होकर परिप्रमण करता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त 'सदैवोष्णीभूतः' पद अशुद्ध है, उसके स्थान पर शुद्ध स्वरूप 'सदैवोष्णभूतः' अथवा 'सदैवोष्णः' होगा; यतः सूर्य के सदा-सर्वदा उष्ण होने के कारण अभूततद्वाव की स्थिति न होने के कारण 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्छः' (पा० सू०-५.४.५०) से विधीयमान 'च्छ' की प्रवृत्ति न होने के फलस्वरूप च्छ के अभाव में 'अस्य च्छौ' (पा० सू०-७.४.३२) की प्रवृत्ति भी नहीं होने से उष्ण के अकार को इकार नहीं होगा और इस प्रकार कथमपि 'सदैवोष्णीभूतः' प्रयोग नहीं होगा ॥२५॥

२६. सन्दिहानः समापृच्छन् शिष्यो गुरुणा बोधयितव्यः ।

वाक्यार्थ— सन्देहग्रस्त होकर पूछने वाले शिष्य की शंका का निवारण गुरु को अवश्य करना चाहिये ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त 'समापृच्छन्' पद अशुद्ध है; क्योंकि आड़ उपसर्गक 'पृच्छ' धातु के 'आडि नु प्रच्छयोः' वार्तिक के द्वारा आत्मनेपदी होने के कारण 'शानच्' आदेश होने के कारण शुद्ध स्वरूप 'समापृच्छमानः' होगा, 'समापृच्छन्' नहीं होगा ॥२६॥

२७. इदमस्मद्व्याचिख्यासितं विषयं पण्डिता विदाङ्कुर्वन्तु, मूर्खा कथं विदाङ्करिष्यन्ति ।

वाक्यार्थ— मेरे द्वारा व्याख्यायित इस विषय को विद्वान् लोग समझें, मूर्ख लोग इसे कैसे समझेंगे ?

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘विदाङ्करिष्यन्ति’ अशुद्ध है; यतः विदाङ्करिष्यन्ति में ‘विदाङ्कुर्वन्त्वत्यन्यतरस्याम्’ (पा० सू०-३. १.४१) की प्राप्ति न होने के कारण लृट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में शुद्ध रूप ‘वेदिष्यन्ति’ होगा ॥२७॥

२८. दिने सूर्यः प्रकाशकर्ता रात्रौ चाग्निसोमौ ।

वाक्यार्थ— दिन में सूर्य प्रकाश करता है एवं रात्रि में अग्नि तथा चन्द्रमा (प्रकाश करते हैं) ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्यान्त में प्रयुक्त पद ‘अग्निसोमौ’ पद साधु नहीं है; यतः अग्नि शब्द के पश्चात् सोम शब्द की उपस्थिति के फलस्वरूप अग्नि के इकार को ‘ईदग्नेः सोमवरुणयोः’ (पा० सू०-६.३.२७) से ईद् आदेश होकर ‘अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः’ (पा० सू०-८.३.८२) से सोम शब्द के सकार को षत्व होकर ‘अग्नीषोमौ’ साधु शब्द होगा ॥२८॥

२९. एष महिषवच्छ्यामो गौः कूलं चिखण्डयिषति ।

वाक्यार्थ— भैंस की तरह यह काली गाय किनारे को तोड़ना चाह रही है ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त ‘महिषवच्छ्यामो गौः’ वाक्यखण्ड अशुद्ध है; यतः क्रियासादृश्य-बोधक स्थलों पर ही ‘तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः’ (पा० सू०-५.१.११५) से ‘वति’ प्रत्यय की प्रवृत्ति होती है; जबकि यहाँ क्रियाजन्य सादृश्य की स्थिति न होने के कारण उक्त सूत्र की प्राप्ति ही नहीं है । अतएव यहाँ शुद्ध स्वरूप होगा ‘महिष इव श्यामो गौः’ ॥२९॥

३०. अस्मिन् बिले नकुलकुलानि विशन्ति, निविशन्ति च तस्मिन् मूषकाः ।

वाक्यार्थ— इस बिल में नेवले रहते हैं । उसी में चूहे भी प्रवेश कर रहे हैं ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में ‘निविशन्ति’ क्रियापद साधु नहीं है; यतः ‘नेर्विशः’ (पा० सू०-१.३.१७) सूत्र के विधानानुसार विश् धातु के अव्यवहित

पूर्व 'नि' उपसर्ग की उपस्थिति होने के कारण इससे आत्मनेपद होगा और तत्फलस्वरूप शुद्ध स्वरूप 'निविशन्ते' होगा; 'निविशन्ति' नहीं होगा ॥३०॥

३१. अस्मिन् कुशासनेऽध्युषितः सुप्रजो राजा धैर्यधारिधौरेयोऽस्ति ।

वाक्यार्थ— इस कुशासन पर बैठा हुआ सुन्दर प्रजाओं वाला राजा धैर्य धारण करने वालों में अग्रणी है ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्यारम्भ में पठित 'अस्मिन् कुशासने' के स्थान पर शुद्ध स्वरूप 'इदं कुशासनम्' होगा; यतः वस् धातु के अव्यव-हित पूर्व में अधि उपसर्ग की उपस्थिति होने के फलस्वरूप 'उपान्वध्याङ्क्वसः' (पा० सू०-१.४.४८) से कर्मसञ्चा होकर द्वितीया विभक्ति होगी, सप्तमी नहीं होगी ।

एवमेव वाक्यमध्य में प्रयुक्त 'सुप्रजः' पद भी अशुद्ध है; यतः प्रकृत वाक्य में प्रजा शब्द के अव्यवहित पूर्व 'सु' की उपस्थिति होने के फलस्वरूप 'नित्यमसिच्चजामेधयोः' (पा० सू०-५.४.१२२) से समासान्त असिच् होने के परिणामस्वरूप शुद्ध स्वरूप 'सुप्रजाः' होगा, 'सुप्रजः' नहीं होगा ॥३१॥

३२. सुमेधसां सङ्गेन मन्दमेधसोऽपि पूज्या मेधाविनो भवन्ति ।

वाक्यार्थ— तीव्र बुद्धि वाले लोगों के साथ रहने से मन्द बुद्धि वाले लोग भी पूज्य और मेधावी बन जाते हैं ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्यमध्य में प्रयुक्त 'मन्दमेधसोऽपि' शब्द अशुद्ध है; यतः मेधा शब्द के पूर्व 'नित्यमसिच्चजामेधयोः' (पा० सू०-५.४.१२२) होने वाला नित्य असिच् मेधा शब्द के अव्यवहित पूर्व 'नज्' 'दुर' अथवा 'सु' रहने पर ही होता है और प्रकृत में उक्त का अभाव होने के कारण प्रकृत में शुद्ध स्वरूप 'मन्दमेधाः' होगा; 'मन्दमेधसः' नहीं होगा ॥३२॥

३३. विरोचनमरीचिमाहात्म्यादन्धतमसं प्रणष्टम् ।

वाक्यार्थ— विरोचन तथा मरीचि के प्रभाव से अन्धतमस (घना अन्धकार) नष्ट हो गया ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य के अन्त में प्रयुक्त 'प्रणष्टम्' पद असाधु है; यतः विधीयमान णत्व का 'नशः षान्तस्य' (पा० सू०-८.४.३६) से निषेध हो जाता है ॥३३॥

३४. प्राचीनपुस्तकानि पठनपाठनाद्यगोचरीभूय लुप्तानि ।

वाक्यार्थ— प्राचीन पुस्तके पठन-पाठन से बाहर होकर लुप्त हो गयीं ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘पठनपाठनाद्यगोचरीभूय’ पद साधु नहीं है; क्योंकि सामान्यतया अव्ययेतर के साथ अव्यय का समास निषिद्ध होता है और प्रकृत में पठित ‘गोचर’ शब्द अजहलिलङ्घ है; अतः यहाँ शुद्ध स्वरूप ‘पठनपाठनाद्यगोचरा भूत्वा’ होगा; यतः नञ्चित रूप ‘पठनपाठनाद्यगोचर’ में अभूतद्वाव होने का द्योतन तो नज् के प्रयोग से ही हो जाता है; उसके द्योतनार्थ ‘च्चि’ प्रत्यय का प्रयोग करना आवश्यक नहीं है ॥३४॥

३५. संशृणुमहे रावणसेनायां चतुर्मूर्ढ्नस्त्रिमूर्धनिश्च दैत्या आसन् ।

वाक्यार्थ— हमने सुना है कि रावण की सेना में चार तथा तीन सिरों वाले दैत्य थे ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त ‘त्रिमूर्धनः’ पद अशुद्ध है, शुद्ध स्वरूप ‘त्रिमूर्धः’ होगा; यतः त्रि शब्द के उपरान्त मूर्धन् शब्द की उपस्थिति होने के फलस्वरूप बहुत्रीहि समास की स्थिति में ‘द्वित्रिभ्यां ष मूर्धनः’ (पा० सू०-५.४.११५) से समासान्त ‘ष’ प्रत्यय होता है ।

इसी प्रकार प्रयुक्त क्रियापद ‘संशृणुमहे’ —यह आत्मनेपद प्रयोग भी युक्तियुक्त नहीं है; यतः श्रवणार्थक ‘श्रु’ धातु सकर्मक है, अकर्मक नहीं है । यदि प्रकृत वाक्य में ‘कथयद्यः’ को अध्याहत किया जाय तो प्रकृत धातु के अकर्मक हो जाने के फलस्वरूप उपर्युक्त क्रियापद का प्रयोग भी समीचीन माना जा सकता है ॥३५॥

३६. एष केवलं रूपवद्धार्यः, स तु रसिकभार्यः सरससुभाषितानन्देन यामिनीर्गमयाते ।

वाक्यार्थ— इसकी तो पत्ती केवल सुन्दर रूपवती है, रसिक पत्ती वाला वह पुरुष रसमय सुन्दर वचनों को सुनते हुये रात्रि व्यतीत करता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘रसिकभार्यः’ अशुद्ध है; यतः उसके पूर्व पद ‘रसिका’ के उपधा में ककार होने के फलस्वरूप ‘न कोपधायाः’

(पा० सू०-६.३.३७) से उसके पुँवद्वाव का निषेध हो जाने के कारण शुद्ध रूप ‘रसिकाभार्यः’ होगा ॥३६॥

३७. आवयोरेष विशेषो यत्त्वमकेशपत्नीकोऽहञ्च सुकेशपत्नीकोऽस्मि ।

वाक्यार्थ— हम दोनों में यही अन्तर है कि तुम्हारी पत्नी के बाल नहीं हैं तथा मैं सुन्दर केशों वाली पत्नी का पति हूँ ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘सुकेशपत्नीकः’ शब्द असाधु है; यतः स्वाङ्गवाचक ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द ‘सुकेशी’ के ‘स्त्रियाः पुंवत्’ (पा० सू०-६.३.३४) से होने वाले पुँवद्वाव का ‘स्वाङ्गाच्चेतः’ (पा० सू०-६.३.४०) से निषेध होने के फलस्वरूप ‘स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्’ (पा० सू०-४.१.५४) से डीप् प्रत्यय होकर शुद्ध स्वरूप ‘सुकेशीपत्नीकः’ होगा ॥३७॥

३८. पिकशावः काकीभिः पाल्यते, न तु काकीशावः पिकैः ।

वाक्यार्थ— कोयल का बच्चा कौवे की पत्नी द्वारा पालित होता है, न कि कौवी का बच्चा कोयल के द्वारा ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘काकीशावः’ पद असाधु है; यतः ‘काकी’ शब्द का कुक्कुट्यादि गण में एवं ‘शाव’ शब्द का अण्डादि गण में पाठ है; अतः ‘कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु’ (वार्तिक—पा० सू०-६.३.४२) से ‘काकी’ शब्द का पुँवद्वाव होने के परिणामस्वरूप साधु स्वरूप ‘काकशावः’ होगा, ‘काकीशावः’ नहीं होगा ॥३८॥

३९. मूर्खाश्शतुःकृत्वः पञ्चकृत्वश्चोपदिष्टा अपि ग्रन्थाभिप्रायं नाधि- गच्छन्ति ।

वाक्यार्थ— मूर्ख लोग चार-पाँच बार बताने पर भी ग्रन्थ के अभिप्राय को नहीं जान पाते ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘मूर्खाश्शतुःकृत्वः पञ्चकृत्वश्चोपदिष्टा’ पद असाधु है; यतः ‘द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्’ (पा० सू०-५.४.१८) से ‘कृत्वसुच्’ प्रत्यय के अपवादस्वरूप ‘सुच्’ के हो जाने पर शुद्ध स्वरूप ‘मूर्खाः चतुःपञ्चकृत्वश्चोपदिष्टाः’ होगा, उपर्युक्त शब्दस्वरूप नहीं होगा ॥३९॥

४०. को न मधुरगानं शुश्रूषति श्रुतिमान् ?

वाक्यार्थ— कौन विद्वान् मधुर गान सुनना नहीं चाहता ?

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘शुश्रूषति’ असाधु है; यतः सन्तत श्रु धातु के ‘ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः’ (पा० सू०-१.३.५७) से आत्मनेपदी होने के फलस्वरूप साधु स्वरूप ‘शुश्रूषते’ होगा, ‘शुश्रूषति’ नहीं होगा ॥४०॥

४१. तस्याचरणं बोधश्च प्रशस्यौ स्तः ।

वाक्यार्थ— उसके आचरण तथा ज्ञान— दोनों ही प्रशंसनीय हैं ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘प्रशस्यौ’ पद असाधु है; यतः यहाँ पठित नपुंसक ‘आचरणम्’ शब्द के साथ पठित ‘बोधः’ शब्द के पुँलिङ्ग होने पर भी ‘नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्’ (पा० सू०-१.२.६९) से नपुंसक का एकशेष होने के फलस्वरूप एकवद्भाव होने पर शुद्ध रूप ‘प्रशस्यमस्ति’ एवं एकवद्भाव के अभाव में ‘प्रशस्ये’ होगा; लेकिन ‘प्रशस्यौ’ कथमपि नहीं होगा ॥४१॥

४२. देवदत्तं प्रति शुश्रूषति यत् एषोऽनुजिज्ञासति ।

वाक्यार्थ— यह जो जानना चाहता है, वह देवदत्त से सुनना चाहता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘शुश्रूषति’ असाधु है। इसका ज्ञान करने के लिये वाक्यसंख्या चालीस (४०) की हिन्दी व्याख्या द्रष्टव्य है ॥४२॥

४३. देवी खड्गेन शुम्भस्य शिरोऽप्रहरत्स च ममार ।

वाक्यार्थ— देवी ने खड्ग से शुम्भ के सिर पर प्रहार किया और वह मर गया ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘अप्रहरत्’ साधु नहीं है; यतः हरणार्थक ‘ह’ धातु से विधीयमान ‘लुड्लड्लड्क्ष्वदुदात्तः’ (पा० सू०-६.४.७१) अट् आगम धातु के अव्यवहित पूर्व में होगा, धातु के साथ प्रयुक्त उपसर्ग (प्र) के पूर्व नहीं होगा। अत एव साधु क्रियापद ‘प्राहरत्’ होगा, ‘अप्रहरत्’ नहीं होगा ॥४३॥

४४. परमेतां दुराचारामवगत्यैतद्वितरितं न कोऽप्याददाति ।

वाक्यार्थ— किन्तु इस स्त्री को दुराचारिणी जानकर ही इसके द्वारा प्रदत्त वस्तु को कोई ग्रहण नहीं करता ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में पठित ‘वितरितम्’ शब्द साधु नहीं है; साधु स्वरूप तो ‘वितीर्णम्’; यतः ‘श्रुकः किति’ (पा० सू०-७.२.११) से विधीयमान इट् का निषेध हो जाता है ।

उपर्युक्त वाक्य में ही पठित क्रियापद ‘आददाति’ भी असाधु है; यतः आड् उपसर्गपूर्वक ‘दा’ धातु का ‘आडो दोऽनास्यविहरणे’ (पा० सू०-१.३.२०) से परस्मैपद के प्रतिषेध के साथ-साथ आत्मनेपद का विधान होने के कारण यहाँ शुद्ध स्वरूप ‘आदते’ होगा ॥४४॥

४५. कथमेष आदत्तबहुधन आस्यं व्याददाति ?

वाक्यार्थ— बहुत धन को रखने वाला यह क्यों अपना मुँह फैलाता है ?

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘आदत्तबहुधनः’ पद असाधु है, साधु पद तो ‘आत्तबहुधनः’ होगा; यतः ‘अच उपसर्गतः’ (पा० सू०-७.४.४७) से धातु के दकार का उपसर्ग के साथ योग होने के कारण तकार हो जाता है ॥४५॥

४६. एष शुनको नित्यं भोजनसमये उपतिष्ठति ।

वाक्यार्थ— यह कुत्ता नित्य भोजन के समय पास आ जाता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में पठित परस्मैपदी क्रियापद ‘उपतिष्ठति’ साधु नहीं है; यतः उप उपसर्ग के साथ प्रयुक्त ‘स्था’ धातु ‘उपादेवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्’ (वार्तिक—पा० सू०-१.३.२५) परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद हो जाता है; फलस्वरूप साधु क्रियापद ‘उपतिष्ठते’ होगा ॥४६॥

४७. अहोऽधुना राजा प्रतिष्ठासति शत्रून् विजिगीषया ।

वाक्यार्थ— अहो ! इस समय राजा शत्रुओं को जीतने की इच्छा से प्रस्थान करना चाहता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘अहोऽधुना’ पद असाधु है। इसके

स्थान पर साधु पद ‘अहो अधुना’ होगा; यतः ओदन्त निपात ‘अहो’ की ‘ओत्’ (पा० सू०-१.१.१५) से प्रगृह्यसंज्ञा होने के फलस्वरूप ‘प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्’ (पा० सू०-६.१.१२५) से प्रकृतिभाव होने के कारण पूर्वरूप सन्धि नहीं होगी ।

एवमेव प्रयुक्त असाधु क्रियापद ‘प्रतिष्ठासति’ के स्थान पर साधु क्रियापद ‘प्रतिष्ठासते’ होगा; यतः ‘प्र’ उपसर्गपूर्वक प्रयुक्त ‘स्था’ धातु परस्मैपद के स्थान पर ‘समवप्रविभ्यः स्थः’ (पा० सू०-१.३.२२) से आत्मनेपदी हो जाता है ।

इसी प्रकार प्रयुक्त पद ‘शत्रून्’ भी असाधु है, साधु प्रयोग तो ‘शत्रूणाम्’ होगा; यतः ‘कर्तृकर्मणोः कृति’ (पा० सू०-२.६.६५) से यहाँ षष्ठी होती है ॥४७॥

४८. यथा भवान् स्वकेशांस्तैलादिभिः संस्करोति तथाऽहमपि निज- केशान् संश्चिकीर्षामि ।

वाक्यार्थ— जिस प्रकार आप अपने केशों को तैलादि के द्वारा सुन्दर बनाते हैं, वैसे ही मैं भी अपने केशों को करना चाहता हूँ ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘संश्चिकीर्षामि’ असाधु है, साधु क्रियापद तो ‘संश्चिकीर्षामि’ होगा; यतः ‘संपरिभ्यां करोतौ भूषणे’ (पा० सू०-६.१.१३७) से विधीयमान सुट् आगम अभ्यास के पश्चात् संयुक्त होता है, पूर्व में नहीं होता ॥४८॥

४९. एष महिषीपदेन हतो न तथा व्यथितो यथा मृगीपदेन ताडितः ।

वाक्यार्थ— यह व्यक्ति महिषी-पद (भैंस के पादप्रहार) से मारे जाने पर उतना पीड़ित नहीं हुआ, जितना मृगीपद से ताडित होकर ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में पठित असाधु पद ‘मृगीपदेन’ के स्थान पर साधु पद ‘मृगपदेन’ होगा; यतः ‘मृगी’ शब्द कुकुट्यादि गण में और ‘पद’ शब्द अण्डादि गण में पठित है; फलस्वरूप ‘कुकुट्यादीनामण्डादिषु’ (पा० सू०-६.३.४२) वार्तिक से पुँवद्वाव हो जाता है ॥४९॥

५०. पादोपहतो विभीषणो रामं सेवयाम्बभूव ।

वाक्यार्थ— पैर से प्रहार किये जाने पर विभीषण राम की सेवा में गये।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रथमतः पठित ‘पादोपहतो’ पद असाधु है, उसके स्थान पर साधु पद ‘पदोपहतो’ होगा; यतः ‘उपहत’ शब्द के पूर्व-वर्ती होने पर ‘पाद’ शब्द के स्थान पर ‘पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु’ (पा० सू०-६.३.५२) से ‘पद’ आदेश होता है ॥५०॥

५१. गोगोपगिलोऽघासुरः कृष्णेन व्यापादयाम्बभूवे ।

वाक्यार्थ— गायों तथा गोपों को निगलने वाला अघासुर कृष्ण के द्वारा मारा गया।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रथमतः पठित ‘गोगोपगिलः’ पद असाधु है, इसके स्थान पर साधु पद तो ‘गोगोपङ्गिलः’ होगा; यतः गिल-भिन्न ‘गोप’ शब्द के पश्चात् पुनः ‘गिल’ शब्द का प्रयेग होने पर ‘गिलेऽगिलस्य’ (पा० सू०-३.६.७०) वार्तिक से मुम् हो जाता है ॥५१॥

५२. काविमौ समानरूपावाजिगमिषतः ।

वाक्यार्थ— समान रूप को धारण करने वाले ये दोनों कौन हैं, जो जाना चाहते हैं।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में पठित ‘समानरूपौ’ शब्द अशुद्ध है। इसके स्थान पर शुद्ध शब्द ‘सरूपौ’ होगा; यतः ‘रूप’ शब्द के अव्यवहित पूर्व में प्रयुक्त होने वाले ‘समान’ शब्द के स्थान पर ‘ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवियोवचनबन्धुषु’ (पा० सू०-६.३.८५) से ‘स’ आदेश हो जाता है ॥५२॥

५३. स ऋक्सामनी अधीतवान् एष तु ऋग्यजुषी ।

वाक्यार्थ— उसने ऋग्वेद तथा सामवेद के मन्त्रों को पढ़ा तथा इसने ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के मन्त्रों को।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में पठित ‘ऋक्सामनी’ एवं ‘ऋग्यजुषी’— ये दोनों ही पद अशुद्ध हैं। इनके स्थान पर शुद्ध पद होगा— ‘ऋक्सामे’ एवं ‘ऋग्यजुषे’; यतः ‘ऋक्सामन्’ एवं ‘ऋग्यजुष्’— दोनों ही शब्द ‘अचतुर-

विचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनङ्गुहक्सामिवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्त-
न्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनि:श्रेयसपुरुषायुषद्वयायुषत्र्यायुषगर्यजुषजातोक्षमहोक्ष-
वृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्चाः’ (पा० सू०-५.४.७७) से अजन्त निपातित होते हैं ॥५३॥

५४. विद्वत्सभायां धर्मोपदेशो भवति, रक्षःसभासु च पापोपदेशः ।

वाक्यार्थ— विद्वानों की सभा में धर्मोपदेश होता है तथा राक्षसों की सभा में पाप का उपदेश होता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में पठित ‘रक्षःसभासु’ पद अशुद्ध है । इसके स्थान पर शुद्ध स्वरूप रक्षःसभेषु’ होगा; यतः अव्यवहित पूर्व ‘रक्षः’ शब्द वाले सभान्त तत्पुरुष समास में ‘सभाराजाऽमनुष्यपूर्वा’ (पा० सू०-२.४.३२) से नपुँसक लिङ्ग होने पर उसके सप्तमी बहुवचन में शुद्ध रूप ‘रक्षःसभेषु’ ही होगा, ‘रक्षःसभासु’ नहीं होगा ॥५४॥

५५. किमिति नृपसभां निन्दसि, न कदाऽप्यवलोकिता त्वया राज- सभा ?

वाक्यार्थ— तुम राजसभा की निन्दा क्यों कर रहे हो ? क्या तुमने कभी राजसभा नहीं देखी ?

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘नृपसभाम्’ पद साधु नहीं है, साधु पद तो ‘नृपसभम्’ होगा; यतः राजा के पर्यायवाचक नृप शब्द के अव्यवहित पूर्व में होने वाले सभान्त तत्पुरुष समास के ‘सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा’ (पा० सू०-२.४.३२) से नपुँसक होने के फलस्वरूप द्वितीया एकवचन में उपर्युक्त रूप ही शुद्ध होगा ॥५५॥

५६. मेघा वर्षन्तु मेघा वर्षन्तु इति सम्प्रवदन्ति कृषीवलाः ।

वाक्यार्थ— मेघ वर्षा करें, मेघ वर्षा करें— ऐसा किसान बोल रहे हैं ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त अशुद्ध क्रियापद ‘सम्प्रवदन्ति’ के स्थान पर शुद्ध स्वरूप ‘सम्प्रवदन्ते’ होगा; यतः ‘व्यक्तवाचां समुच्चारणे’ (पा० सू०-१.२.४८) से आत्मनेपद का विधान होता है ॥५६॥

५७. मामनाराध्य विद्याऽधिगमस्ते न भविष्यति ।

वाक्यार्थ— मेरा अपमान करके (मेरे पास न रहने से) तुम्हें विद्या की प्राप्ति नहीं होगी ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘मामनाराध्य’ पद को यद्यपि विना किसी हिचक के प्रत्यक्षतया साधु नहीं कहा सकता; फिर भी ‘अनाराध्य’ पद के पश्चात् ‘तिष्ठतः’ पद का अध्याहार करके समानकर्तृकत्व का सम्पादन हो जाने पर ‘समानकर्तृकयोः पूर्वकाले’ (पा० सू०-३.४.२१) से ‘त्वा’ करने के पश्चात् उसके स्थान पर ‘समासेऽनव्यूर्वे त्वो ल्यप्’ से ल्यप् करने पर उक्त प्रयोग को भी साधु स्वीकार किया जा सकता है; जैसा कि महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंशमहाकाव्य के प्रथम सर्ग में कहा भी है—

अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति ।

मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा ॥

लेकिन जहाँ समानकर्तृकत्व का अभाव होगा, वहाँ तो शुद्ध स्वरूप ‘मदाराधनं विना’ ही होगा ॥५७॥

५८. इदमत्यन्तमशुद्धं वाक्यम्, एनं वैयाकरणोऽपि न वेत्ति ।

वाक्यार्थ— यह अत्यन्त अशुद्ध वाक्य है, इसे वैयाकरण भी नहीं जानते।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘एन’ पद साधु नहीं है; यतः सर्वनाम ‘एतद्’ शब्द का प्रयोग यहाँ प्रथमतः पठित नपुंसक लिङ्ग वाले वाक्य का परामर्शक है; अत एव ‘अन्वादेशो नपुंसके एनद्वक्तव्यः’ (वार्तिक-२.४.३४) के नियमानुसार द्वितीया एकवचन में साधु स्वरूप ‘एनत्’ होगा ॥५८॥

५९. खलानां संसर्गत् को न विरिंसते ?

वाक्यार्थ— दुर्जनों की संगति से कौन दूर नहीं रहना चाहता ?

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त आत्मनेपदी क्रियापद ‘विरिंसते’ शुद्ध नहीं है; यतः पूर्व में ‘वि’ उपसर्ग संयुक्त होने के फलस्वरूप ‘रम्’ धातु ‘व्याङ्परिभ्यो रमः’ (पा० सू०-१.३.८३) परस्मैपदी हो जायगा और तब सन्नन्त में ‘पूर्ववत्सनः’ (पा० सू०-१.३.६२) के नियमानुसार शुद्ध स्वरूप ‘विरिंसति’ होगा ॥५९॥

६०. कम्पमानान् वृक्षान् दृष्ट्वा किमिह कम्पसे ? वायुरेतान् कम्पयते ।

वाक्यार्थ— काँपते हुए वृक्षों को देखकर तुम क्यों भयभीत हो (काँप) रहे हो ? इन्हें तो हवा कँपा रही है ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त आत्मनेपदी क्रियापद ‘कम्पयते’ शुद्ध नहीं है; अपितु शुद्ध क्रियापद ‘कम्पयति’ होगा; यतः चलनार्थक ‘कम्प’ धातु से एन्ट ग्राहित प्रक्रिया में ‘निगरणचलनार्थेभ्यश्च’ (पा० सू०-१.३.८७) से आत्मनेपद का निषेध होकर परस्मैपद हो जाता है ॥६०॥

६ १. अहं सावधानतया वारं वारमुवाच, न भवन्तः शृण्वन्ति ।

वाक्यार्थ— मैंने सावधानीपूर्वक बार-बार कहा, लेकिन आप लोग सुनते ही नहीं ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त प्रथम क्रियापद ‘उवाच’ यहाँ पर असङ्गत है; सङ्गत प्रयोग ‘अवोचम्’ अथवा अब्रुवम्’ होगा; यतः स्वयं द्वारा सावधानीपूर्वक उच्चरित किये गये वचन कथमपि परोक्ष नहीं हो सकते; इसलिये किसी भी प्रकार से लिट् लकार का प्रयोग उचित नहीं होगा ॥६१॥

६ २. किमिति भोजयते भवानस्मान् नाहं लशुनं कदापि पस्पर्श ।

वाक्यार्थ— आप मुझे लहसुन का भोजन क्यों करा रहे हैं ? मैंने तो लहसुन का कभी स्पर्श भी नहीं किया ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में पठित आत्मनेपदी क्रियापद ‘भोजयते’ यहाँ अशुद्ध है, शुद्ध प्रयोग परस्मैपदी क्रियापद ‘भोजयति’ होगा; यतः निगरणार्थक एन्ट में ‘निगरणचलनार्थेभ्यश्च’ (पा० सू०-१.३.८७) से आत्मनेपद का निषेध होकर परस्मैपद का विधान किया गया है ।

इसी प्रकार स्वयं द्वारा ही अस्पृष्ट लशुन कथमपि परोक्ष नहीं कहा जा सकता, अतः यहाँ ‘पस्पर्श’ यह लिट् का प्रयोग भी असङ्गत है, सङ्गत प्रयेत तो ‘अस्पृशम्’ अथवा ‘अस्प्राक्षम्’ होगा ॥६२॥

६ ३. व्यापारमिषेण गौरमुखा आर्यावर्त्तं स्माजग्मुः ।

वाक्यार्थ— अंग्रेज व्यापार के बहाने आर्यावर्त में प्रविष्ट हुये ।

व्याकरण— ‘लट् स्मे’ (पा० सू०-३.२.११८) के नियमानुसार ‘स्म’

अव्ययपद के योग में लट् के स्थान पर लट् लकार का प्रयोग होता है; अतः यहाँ लिट् का निषेध होकर 'आगच्छन्ति स्म' यह लट् का प्रयोग होगा ॥६३॥

६४. भो बालाः पठत, एवं स्म गुरुरुवाच ।

वाक्यार्थ— हे बालकों ! तुम लोग पढ़ो, ऐसा गुरुजी ने कहा है ।

व्याकरण— पूर्वोक्त नियमानुसार ही यहाँ भी 'स्म' के योग में लिट् लकार का प्रयोग न होकर लट् का प्रयोग होगा और शुद्ध रूप 'वक्ति स्म' अथवा 'आह स्म' होगा ॥६४॥

६५. हा धिक् ! अपि मातरमताडयत् भवान् ?

वाक्यार्थ— तुम्हें धिक्कार है ! क्या आपनी माता को भी तुमने पीट दिया ?

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद 'अताडयत्' अशुद्ध है; यतः निन्दा का प्रसङ्ग उपस्थित होने पर 'गर्हयां लडपिजात्वोः' (पा० सू०-३.३.१४२) के नियमानुसार समस्त लकारों के अपवादस्वरूप लट् लकार का प्रयोग किया जाता है; अतः यहाँ शुद्ध क्रियापद 'ताडयति' होगा ॥६५॥

६६. अहो किं जातु वेश्यामभियास्यति भवान् ?

वाक्यार्थ— आश्वर्य है, क्या आप वेश्या के पास जायेंगे (वेश्यागमन करेंगे) ?

व्याकरण- प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त लट् लकार का क्रियापद 'अभियास्यति' असाधु है, यहाँ साधु क्रियापद लट् लकार का 'अभियाति' होगा; क्योंकि यहाँ पर गर्ह अर्थात् निन्दा का प्रसङ्ग है; अतः 'गर्हयां लडपिजात्वोः' (पा० सू०-३.३.१४२) से 'जातु' के योग में लट् लकार का विधान किया गया है ॥६६॥

६७. न श्रद्धे किङ्किलं त्वं वेश्यां स्निह्यसि ।

वाक्यार्थ— मेरी श्रद्धा तुम्हारे प्रति नहीं है, क्योंकि तुम वेश्या से प्रेम करते हो ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में 'किङ्किल' के योग में प्रयुक्त लट् लकार वाला क्रियापद 'स्निह्यसि' असाधु है; यतः 'किङ्किलास्त्यर्थेषु लट्' (पौ० सू०-

३.३.१४६) से ‘किङ्गिल’ के योग में लट् लकार का प्रयोग होता है; फलस्वरूप यहाँ साधु प्रयोग ‘स्नेक्ष्यसि’ होगा ॥६७॥

६८. यत्त्वं ब्राह्मणः सुरां सेवसे, यच्च शूद्रीमुखं चुम्बसि अन्यायं तत् ।

वाक्यार्थ— हे ब्राह्मण ! तुम जो सुरा (मदिरा) का सेवन तथा शूद्री स्त्री के मुख का चुम्बन करते हो, वह उचित नहीं है ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त ‘शूद्रीमुखं’ शब्द साधु नहीं है; यतः स्त्रीत्व की विवक्षा में जात्यर्थक शूद्र शब्द से ‘शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः’ (वार्तिक-४.१.४) से टाप् प्रत्यय का विधान होने के फलस्वरूप साधु स्वरूप ‘शूद्रामुखम्’ होगा ।

एवमेव यहाँ पर प्रयुक्त ‘चुम्बसि’ क्रियापद भी असाधु है; यतः ‘गर्हयाञ्च’ (पा० सू०-३.३.१४९) से लिट् लकार का विधान किया गया है; अतः यहाँ पर साधु प्रयोग ‘चुम्बेः’ होगा, ‘चुम्बसि’ नहीं होगा ॥

६९. चित्रं यच्च वैष्णवो मत्स्यमांसमभुनक् ।

वाक्यार्थ— यह आश्वर्य है कि वैष्णव ने भी मछली-माँस का भक्षण किया ।

व्याकरण— भोजन अर्थ में भुज् धातु का प्रयोग विहित होने के कारण प्रकृत वाक्य में ‘भुजोऽनवने’ (पा० सू०-१.३.६६) से आत्मनेपद का विधान होने के फलस्वरूप ‘चित्रीकरणे च’ (पा० सू०-३.३.१५०) सूत्र के विधानानुसार शुद्ध क्रियापद ‘अभुनक्’ नहीं होगा; बल्कि लिङ् लकार का ‘भुञ्जीत’ होगा ॥६९॥

७०. हरिभक्तो भूमिस्थोऽपि वासवं हसति !

वाक्यार्थ— जमीन पर रहने वाला भी हरि का भक्त (स्वर्ग में रहने वाले) इन्द्र का उपहास करता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘भूमिस्थः’ पद साधु नहीं है; बल्कि साधु पद भूमिष्ठः’ होगा; क्योंकि भूमि शब्द के पश्चात् उपस्थित होने वाले ‘स्थ’घटक सकार को ‘अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशड्कवङ्मज्जिपुञ्जि-परमेबर्हिदिव्यग्निभ्यः स्थः’ (पा० सू०-८.३.९७) से षकार होने के फल-स्वरूप ‘षुना षुः’ (पा० सू०-८.४.४१) से षुत्व हो जाता है ॥७०॥

७१. अध्यापकब्राह्मणः शिष्यान् पिपाठयिषन्ति ।

वाक्यार्थ— अध्यापक ब्राह्मण (ब्राह्मण अध्यापक) शिष्यों को पढ़ाना चाहते हैं ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘अध्यापकब्राह्मणः’ पद अशुद्ध है, शुद्ध पद ‘ब्राह्मणाध्यापकः’ होगा; यतः ‘पोटायुवतिस्तोककतिषयगृष्टिधेनुवशावेहद्वष्ट्यणीप्रवक्तुश्रोत्रियाध्यापकधूर्तजातिः’ (पा० सू०-२.१. ६५) से ‘अध्यापक’ शब्द का परनिपात होता है ॥७१॥

७२. अनयोरेकः सुरापी, अन्यश्च क्षीरपी ।

वाक्यार्थ— इन दोनों में से एक सुरापान करने वाला है तथा दूसरा दूध पीने वाला ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘सुरापी’ एवं ‘क्षीरपी’— दोनों ही पद शुद्ध नहीं हैं; यतः ‘सुरा पान करने वाली’ एवं ‘क्षीर पान करने वाली’— इन स्त्रीलिङ्ग अर्थों की विवक्षा होने पर ‘एकः’ और ‘अन्यः’ के स्थान पर ‘एका’ और ‘अन्या’ का प्रयोग होगा । ‘गापोष्टक्’ (पा० सू०-३.२.८) सूत्र से विधीयमान ‘टक्’ की प्रवृत्ति भी ‘पिबते: सुराशीध्वोरिति वाच्यम्’ वार्तिक के अनुसार ‘सुरा’ एवं ‘शीधु’ शब्दों के अव्यवहित पूर्व में होने पर ही होने के कारण येन-केन प्रकारेण ‘सुरापी’ शब्द की निष्पत्ति तो सम्पन्न की जा सकती है, परन्तु ‘क्षीरपी’ शब्द कथमपि निष्पन्न नहीं किया जा सकता ।

इस प्रकार टक् विधायक सूत्र का अभाव होने के फलस्वरूप ‘डीप्’ प्रत्यय न होकर ‘टाप्’ प्रत्यय ही होगा, जिसके परिणामस्वरूप स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में ‘क्षीरपा’ शब्द ही निष्पन्न होगा; लेकिन पुँलिङ्ग की विवक्षा में ‘टक्’ और ‘क’ होकर ‘सुरापः’ एवं ‘क्षीरपः’ शब्द निष्पन्न होंगे; अतः प्रकृत में शुद्ध प्रयोग ‘सुरापः’ एवं ‘क्षीरपः’ ही होगा ॥७२॥

७३. एष सन्देशहर एव भारहरतामङ्गीकरिष्यति ।

वाक्यार्थ— यह सन्देशवाहक ही भार ढोना स्वीकार करेगा ।

व्याकरण— यहाँ पर ‘भारहरताम्’ प्रयोग अशुद्ध है, शुद्ध प्रयोग ‘भारहरताम्’ होगा; यतः प्रकृत में ‘अच्’ का प्रसङ्ग नहीं है; क्योंकि उद्यमेतर अर्थ

में ही ‘हरतेरनुद्यमनेऽच्’ (पा० सू०-३.२.९) से ‘अच्’ का विधान किया गया है। अतः यहाँ पर ‘कर्मण्यण्’ (पा० सू०-३.२.१) से अण् प्रत्यय होगा ॥७३॥

७४. एष कर्मकरः स च कलहकरः, उभावपि निशाकरं नावलो- कयतः ।

वाक्यार्थ— यह काम करनेवाला है और वह कलह करने वाला । दोनों ही चन्द्रमा को नहीं देखते (अर्थात् रात्रि की परवाह नहीं करते) ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘कलहकरः’ पद अशुद्ध है; यतः ‘न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु’ (पा० सू०-२.३.२३) से ‘ट’ प्रत्यय का निषेध होने के परिणामस्वरूप ‘कर्मण्यण्’ (पा० सू०-३.२.१) से अण् प्रत्यय होता है; अतएव शुद्ध पद ‘कलहकारः’ होगा, ‘कलहकरः’ नहीं होगा ॥७४॥

७५. सज्जनः क्लेशापहो दुर्जनश्च सुखापहो भवति ।

वाक्यार्थ— सज्जन क्लेश को दूर करने वाला तथा दुर्जन सुख को दूर हटाने वाला होता है ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में ‘सुखापहः’ पद असाधु है; क्योंकि ‘अपे क्लेशतमसोः’ (पा० सू०-३.२.५०) से विधीयमान ‘ड’ प्रत्यय की प्राप्ति का प्रसङ्ग नहीं होने के कारण ‘क्विप्’ प्रत्यय होने के फलस्वरूप ‘सुखापहा’ रूप निष्पत्र होगा ॥७५॥

७६. जगत्कर्ता नित्योऽनित्यो वेत्यस्य समाहितिः कार्या ।

वाक्यार्थ— जगत् का कर्ता ईश्वर नित्य है या अनित्य— इसका निश्चय करना चाहिये ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘जगत्कर्ता’ पद असाधु है, साधु पद ‘जगतः कर्ता’ होगा; यतः तुजन्त ‘कर्तृ’ पद के साथ विधीयमान समास का ‘तृजकाभ्यां कर्तरि’ (पा० सू०-२.२.१५) द्वारा निषेध होता है ॥७६॥

७७. एष मूकस्तृष्णं द्योतयितुं मुखं व्याददन् पानीयं याचते ।

वाक्यार्थ— एक गूँगा व्यक्ति अपनी प्यास को प्रकट करने के लिये मुँह खोले हुये पानी माँगता है ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त असाधु पद ‘व्याददन्’ के स्थान पर साधु पद ‘व्याददत्’ होगा; यतः ‘नाभ्यस्ताच्छतुः’ (पा० सू०-७.१.७८) से तकार को विधीयमान नुम् का निषेध होता है ॥७७॥

७८. अस्मिन् वृक्षे द्वे फलेऽतितरां संशोभेते ।

वाक्यार्थ— इस वृक्ष पर ये दो फल अधिक सुशोभित हो रहे हैं ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त ‘फलेऽतितरां’ पद असाधु है, साधु पद ‘फले अतितरां’ होगा; यतः एदन्त द्विवचन ‘फले’ शब्द की ‘ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्’ (पा० सू०-१.१.११) से प्रगृह्यसंज्ञा होने के फलस्वरूप ‘प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्’ (पा० सू०-६.१.१२५) से प्रकृतिभाव हो जायगा; अत एव सन्धिकार्य नहीं होगा ॥७८॥

७९. गुरुं प्रार्थयित्वा गृहं गच्छत ।

वाक्यार्थ— गुरु से निवेदन करके (प्रार्थना करके) घर जाओ ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘प्रार्थयित्वा’ पद असाधु है, साधु पद तो ‘प्रार्थ्य’ होगा; यतः ‘समासेऽनञ्च्यूर्वे त्वो ल्यप्’ (पा० सू०-७.१.३७) से ‘त्वा’ के स्थान पर ‘ल्यप्’ आदेश हो जाता है ॥७९॥

८०. भो गणक ! अस्य कुकुट्यण्डकस्य क्षेत्रफलं दिश ।

वाक्यार्थ— हे गणितज्ञ ! इस मुर्गी के अण्डे का क्षेत्रफल बताओ ।

व्याकरण— उपरिलिखित वाक्य में पठित ‘कुकुट्यण्डकस्य’ पद असाधु है; क्योंकि कुकुट्यादि गण में ‘कुकुटी’ शब्द का एवं अण्डादि गण में ‘अण्ड’ शब्द का पाठ होने के फलस्वरूप ‘कुकुट्यादीनामण्डादिषु’ (वार्तिक-६.३.४२) द्वारा पुंवद्भाव हो जाता है ॥८०॥

८१. लज्जावती नवोढा विलसद्यां दृग्भ्यां वीक्षते ।

वाक्यार्थ— लज्जायुक्त यह नवविवाहिता अपनी विलासपूर्ण नेत्रों से देखती है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘विलसद्यां’ पद असाधु है, इसके स्थान पर साधु पद ‘विलसन्तीभ्याम्’ होगा; क्योंकि उपर्युक्त पद स्त्रीलिङ्ग शब्द

‘दृक्’ शब्द के विशेषणरूप प्रयुक्त है; अतः वह भी स्त्रीलिङ्ग ही होगा और स्त्रीलिङ्ग में ‘उगितश्च’ (पा० सू०-४.१.६) से डीप् का विधान होगा ॥८१॥

८२. अहो ! आनन्दं यद्राजा प्रजावत्सलतामूरीकरोति ।

वाक्यार्थ— अहो, यह आनन्द का विषय है कि राजा ने प्रजा से स्नेह करना स्वीकार कर लिया ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त नपुँसक लिङ्ग को दर्शाने वाला ‘आनन्दं’ पद अशुद्ध है, शुद्ध पद ‘आनन्दः’ होगा; यतः ‘स्यादानन्दथुरानन्दः’—इस अमरकोशवाक्य के अनुसार ‘आनन्द’ शब्द पुँलिङ्ग होता है ॥८२॥

८३. एषा नदी उच्छलद्विरद्विरिमुं नीवृद्धागं रुन्धति स्म ।

वाक्यार्थ— यह नदी अपने उछलते हुये जल से नीवृद् भाग को नष्ट कर रही है ।

व्याकरण— किसी भी स्थान पर विशेष्य के ही अनुसार ही विशेषण का भी प्रयोग किया जाता है । अतः उपर्युक्त वाक्य में पठित ‘अद्विः’ पद के ‘आपः स्त्री भूमि वार्वारि’—इस अमरकोशवाक्य के अनुसार स्त्रीलिङ्ग होने के फलस्वरूप उसके विशेषणरूप में प्रयुक्त ‘उच्छलद्विः’ पद भी स्त्रीलिङ्ग ही होगा और स्त्रीलिङ्ग में शुद्ध रूप ‘उच्छलन्तीभिः’ होगा ।

साथ ही यहाँ पठित क्रियापद ‘रुन्धति’ भी अशुद्ध है, क्रियापद का शुद्ध स्वरूप ‘रुणद्विः’ होगा ॥८३॥

८४. स श्वेतमुक्ताफलैभ्रातारं स्वसारं च भूषयति ।

वाक्यार्थ— यह सफेद मोतियों से अपने भाई और बहन को भूषित कर रहा है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में पठित ‘भ्रातारं’ पद असाधु है, साधु पद तो ‘भ्रातरम्’ होता है; यतः ‘अपृन्तृच्वसृनप्तृनेष्टत्वष्टक्षत्रृहोतृपोतृप्रशास्तृ-णाम्’ (पा० सू०-६.४.११) की प्राप्ति न होने के फलस्वरूप यहाँ पर दीर्घ नहीं होगा ॥८४॥

८५. हन्त ! कष्टं यद्वयं संस्कृतभाषां परित्यज्य यवनभाषामधीयिमहे ।

वाक्यार्थ— अफसोस ! हम लोग संस्कृत भाषा को छोड़कर यवन भाषा (उर्दू) का अध्ययन कर रहे हैं ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त लिङ् लकारस्थ आत्मनेपदी क्रियापद ‘अधीयिमहे’ असाधु है । साधु क्रियापद तो ‘अधीयाम’ होगा; यतः ‘टित आत्मनेपदानां टेरे’ (पा० सू०-३.४.७९) की प्राप्ति ही न होने के कारण एत्व भी नहीं होगा ॥८५॥

८६. भवान् स्वपुत्रस्य नाम कदा ब्रविष्यति ?

वाक्यार्थ— आप अपने बेटे का नाम कब बतायेंगे ?

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त लिङ् लकार का क्रियापद ‘ब्रविष्यति’ असाधु है, साधु क्रियापद तो ‘वक्ष्यति’ होगा; यतः ‘ब्रू’ धातु के स्थान पर ‘बुवो वचिः’ (पा० सू०-२.४.५३) से ‘वचि’ आदेश हो जाता है; अतः लिङ् लकार की विवक्षा में क्रियापद का साधु स्वरूप ‘वक्ष्यति’ ही होगा ॥

८७. त्वया अहिनकुलयोर्वृत्तान्तः समगामि ।

वाक्यार्थ— आपने सर्प तथा नेवले की घटना को जान लिया ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘अहिनकुलयोः’ पद साधु नहीं है, साधु पद तो ‘अहिनकुलस्य’ होगा; यतः जहाँ शाश्वत विरोध का प्रकरण हो, वहाँ ‘येषाञ्च विरोधः शाश्वतिकः’ (पा० सू०-२.४.९) से एकवद्भाव द्वन्द्व होकर होता है और प्रकृत में अहि और नकुल का शाश्वतिक विरोध स्पष्ट है; अतः दोनों का एकवद्भाव होकर साधु स्वरूप ‘अहिनकुलस्य’ ही होगा ॥८७॥

८८. एष वीरः शत्रूनाहन्ति, शत्रुपत्यश्च स्वमेव शिरो वक्षश्चाघन्ति ।

वाक्यार्थ— यह वीर शत्रुओं को मार रहा है और शत्रुओं की पत्नियाँ स्वयं ही अपना सिर तथा अपनी छाती पीट रही हैं ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त शुद्ध क्रियापद ‘आघ्नते’ होगा, ‘आघ्नन्ति’ नहीं होगा; यतः ‘आङ्गो यमहनः’ (पा० सू०-१.३.२८) के साथ पठित ‘स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्’ वार्तिक के अनुसार स्वाङ्गकर्मक हन् धातु से आत्मनेपद होता है ॥८८॥

८९. एते बुभुक्षिता विद्यार्थिनः पाकपात्राण्युत्तपन्ति, स तु शीतार्तः
स्वपाणिमेवोत्तपति ।

वाक्यार्थ— ये भूखे छात्र रसोई के पात्रों से ही गर्मी प्राप्त कर रहे हैं (ताप रहे हैं) । वह ठण्ड से व्याकुल होकर अपने हाथ से ही गर्मी प्राप्त कर रहा है ।

व्याकरण— पूर्वपठित वाक्य वाली स्थिति ही प्रकृत वाक्य में भी है; क्योंकि स्वाङ्गवाची ‘स्वपाणि’ पद हेतु परस्मैपदी क्रियापद ‘उत्तपति’ का प्रयोग किया गया है; अतः यहाँ भी प्रयुक्त स्वाङ्गकर्मक उत् उपसृष्ट तप् धातु के ‘स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्’ वार्तिक द्वारा आत्मनेपद हो जाने के फलस्वरूप साधु क्रियापद ‘उत्तपते’ होगा, ‘उत्तपति’ नहीं होगा ॥८९॥

९०. अग्निसन्तप्तमयोऽपि दहिष्यति ।

वाक्यार्थ— अग्नि में तपाया हुआ लोहा भी जला डालता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘दहिष्यति’ साधु नहीं है; यतः प्रकृत में इट् की प्राप्ति ही नहीं होगी; अतः साधु क्रियापद ‘धक्ष्यति’ होगा, ‘दहिष्यति’ नहीं होगा ॥९०॥

९१. यद्येवं न दास्यसि चेत्तर्हि राजनियमान्निग्राह्य गृहीष्यामि ।

वाक्यार्थ— यदि इस तरह नहीं दोगे तो राजनियम का उल्लंघन करके (तोड़कर) ले लूँगा ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में पठित क्रियापद ‘गृहीष्यामि’ असाधु है; यतः लृट् लकार में सम्प्रसारणशास्त्र की प्रवृत्ति नहीं होती है; अतः साधु क्रियापद ‘ग्रहीष्यामि’ होगा, ‘गृहीष्यामि’ नहीं होगा ॥९१॥

९२. सर्वेऽपि ‘गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनं क्व मिलति’ इति पृच्छुः ।

वाक्यार्थ— सभी लोगों ने ‘गुप्ताशुद्धि प्रदर्शन कहाँ मिलता है’ ऐसा पूछा ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘पृच्छुः’ असाधु है; यतः यहाँ प्रच्छ धातु को ‘ग्रहिज्यावयिव्यधिविष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां डिति च’ (पा० सू०-६.१.१६) से विधीयमान सम्प्रसारण का प्रसङ्गाभाव है; अतः

साधु क्रियापद ‘प्रच्छुः’ होगा ॥१२॥

१३. यः पठेन्नातियलेन न स विद्यां लभेत् क्वचित् ।

वाक्यार्थ— जो व्यक्ति अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक नहीं पढ़ता, वह कभी भी विद्या प्राप्त नहीं करता ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में शुद्ध क्रियापद ‘लभेत्’ होगा, ‘लभेत्’ नहीं होगा; क्योंकि (डु)लभ(ष्) धातु आत्मनेपदी है, परस्मैपदी नहीं है ॥

१४. दातारः स्वं प्राणं वर्षापि च ददन्ति ।

वाक्यार्थ— दानी जन अपने प्राण तथा शरीर भी दे देते हैं ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में पठित ‘स्वं प्राणं’ पद अशुद्ध है; यतः ‘पुंसि भूम्यसवः प्राणाः’— इस अमरकोशवाक्य के अनुसार पुँलिङ्ग ‘प्राण’ शब्द नित्य बहुवचनान्त है; अतः शुद्ध पद ‘स्वान् प्राणान्’ होगा ।

एवमेव यहाँ प्रयुक्त क्रियापद ‘ददन्ति’ भी अशुद्ध ही है; यतः ‘नाभ्यस्ताच्छतुः’ (पा० सू०-७.१.७८) से प्राप्त नुम का निषेध हो जाता है; अतः शुद्ध क्रियापद ‘ददति’ होगा, ‘ददन्ति’ नहीं होगा ॥१४॥

१५. क्लेशितो बाल उच्चै रुरोदिषति ।

वाक्यार्थ— दुःखी बालक जोर से रोना चाहता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘रुरोदिषति’ असाधु है; यतः रुद् धातु से विहित सन् को ‘रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्व’ (१.२.८) से कित् होने के कारण गुण की प्रसक्ति नहीं हो पायेगी; अतः साधु क्रियापद ‘रुरुदिषति’ होगा, ‘रुरोदिषति’ नहीं होगा ॥१५॥

१६. विषयी दरिद्राति त्यागिनस्तु न दरिद्रान्ति ।

वाक्यार्थ— विषयी दरिद्र होता है, किन्तु त्यागी पुरुष दरिद्र नहीं होते ।

व्याकरण— दुर्गति अर्थ के वाचक ‘दरिद्रा’ धातु के लट् लकार बहु वचन में विहित ‘झि’ प्रत्यय के ‘झ’ को ‘अदभ्यस्तात्’ (पा० सू०-७.१.४) ‘अत्’ आदेश हो जाने पर शुद्ध क्रियापद ‘दरिद्रति’ होगा, ‘दरिद्रान्ति’ नहीं होगा; अतः यहाँ प्रयुक्त ‘दरिद्रान्ति’ क्रियापद अशुद्ध है ॥१६॥

१७. स तस्य गुणानजीगणत्, मदग्रे च अचीकथत् ।

वाक्यार्थ— उसने उस व्यक्ति के गुणों की गणना की तथा मेरे सामने कहा ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘अचीकथत्’ असाधु है, साधु क्रियापद ‘अचकथत्’ होगा; यतः अक् का लोप करने वाला होने के कारण अभ्यास को इत्व होने का प्रसङ्ग ही नहीं होता ॥१७॥

१८. धन्या गोपकन्या या वन्यापि कृष्णमनः समचुचोरत् ।

वाक्यार्थ— धन्य है वह गोपगन्या, जिसने वनवासिनी होते हुये भी कृष्ण के मन को चुरा लिया ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘समचुचोरत्’ अशुद्ध है; यतः गुण की प्राप्ति का अभाव होने के फलस्वरूप अभ्यास के ‘चु’ को ‘दीघो लघोः’ (पा० सू०-७.४.१४) से दीर्घ होकर ‘चू’ हो जाने के कारण शुद्ध क्रियापद ‘समचूचुरत्’ होगा ॥१८॥

१९. शीघ्रं पठनमारभणीयम्, ज्ञानञ्च लभनीयम् ।

वाक्यार्थ— शीघ्र अध्ययन आरम्भ करना चाहिये और ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘आरभणीयम्’ एवं ‘लभनीयम्’— दोनों ही पद अशुद्ध हैं; यतः ‘रभ्’ धातु से ‘रभेरशब्लिटोः’ (पा० सू०-७.१.६३) एवं ‘लभ्’ धातु से ‘लभेश्व’ (पा० सू०-७.१.६४) से नुम् होता है; अतः शुद्ध पद क्रमशः ‘आरभणीयम्’ एवं ‘लभनीयम्’ होगा ॥

१००. कृष्णे जाते कंसप्रहरिमण्डल असुस्वपत् ।

वाक्यार्थ— कृष्ण के उत्पन्न होते ही कंस के प्रहरीगण सो गये ।

व्याकरण— प्रकृत में प्रयुक्त क्रियापद ‘असुस्वपत्’ अशुद्ध है; क्योंकि णिच् की कोई आवश्यकता ही नहीं है; अतः शुद्ध क्रियापद ‘अस्वपत्’ होगा ॥१००॥

**१०१. पञ्चरस्थोऽपि व्याघ्रो देवदत्तं भीषयति, स च तत्कथाख्या-
नैरपरान् भीषयते ।**

वाक्यार्थ— पिंजरे में भी बँधा हुआ बाघ देवदत्त को भयभीत करता है और वह उस बाघ की कथाओं से दूसरों को भयभीत करता है।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘भीषयति’ एवं ‘भीषयते’ दोनों ही क्रियापद अशुद्ध हैं; क्योंकि भयरूप हेतु द्योत्य होने पर ‘भीस्योहेतुभये’ (पा० सू०-१.३.६८) से आत्मनेपद का विधान होने के फलस्वरूप प्रथ-मतः पठित अशुद्ध क्रियापद ‘भीषयति’ के स्थान पर शुद्ध क्रियापद ‘भीषयते’ एवं भयरूप हेतु का अभाव द्योत्य होने पर षुगिवधायक ‘भियो हेतुभये षुक्’ (पा० सू०-७.३.४०) शास्त्र की प्रवृत्ति न होने के फलस्वरूप अशुद्ध पद ‘भीषयते’ के स्थान पर शुद्ध पद ‘भाययति’ का प्रयोग समीचीन होगा ॥१०१॥

१०२. उत्तरस्यां दक्षिणस्यां च ध्रुवौ स्तः, पूर्वस्यां पश्चिमस्यां च रवेरुदयास्तौ ।

वाक्यार्थ— उत्तर तथा दक्षिण दिशा में ध्रुवतारे स्थित हैं, पूर्व तथा पश्चिम दिशा में सूर्य का उदय और अस्त होता है।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘पश्चिमस्याम्’ पद असाधु है; यतः सर्वनाम संज्ञा का अभाव होने के कारण यहाँ ‘स्याट्’ की प्राप्ति नहीं होगी; फलस्वरूप साधु प्रयोग ‘पश्चिमायाम्’ होगा।

एवमेव यहाँ प्रयुक्त ‘उदयास्तौ’ भी असाधु प्रयोग है; यतः ‘उदयास्तम्’ अव्ययपद है और अव्ययपद के साथ विभक्तियों का प्रयोग नहीं होता; बल्कि वे अपने मूल स्वरूप में ही विद्यमान रहते हैं; अतः प्रकृत में ‘उदयास्तौ’ के स्थान पर ‘उदयास्तम्’ ही रहेगा और वही साधु प्रयोग होगा ॥

१०३. अस्मादृशो युष्मादृशं न सिषेविषति ।

वाक्यार्थ— हमारे जैसे लोग आप जैसे की सेवा करना नहीं चाहते।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त परस्मैपदी क्रियापद ‘सिषेविषति’ अशुद्ध प्रयोग है; क्योंकि ‘पूर्ववत्सनः’ (पा० सू०-१.३.६२) द्वारा आत्मनेपद का विधान होने के कारण शुद्ध प्रयोग ‘सिषेविषते’ होगा ॥१०३॥

१०४. अहं भवन्तं रणाजिरं सनाथयितुमुत्सिषाहयिषामि ।

वाक्यार्थ— मैं आपको रणरूपी भवन को सनाथ बनाने के लिये उत्साहित करना चाहता हूँ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘उत्सिषाहयिषामि’ क्रियापद अशुद्ध है, शुद्ध क्रियापद ‘उत्सिषाहयिषामि’ होगा; क्योंकि ‘सः स्विद्स्वदिसहीनाञ्च’ (पा० सू०-८.३.६२) से क्रियमाण षत्व का निषेध हो जाता है ॥१०४॥

१०५. क्रीडन्तं बालं दृष्ट्वा माता अहासीत् ।

वाक्यार्थ— खेलते हुए बालक को देखकर माता हँसी।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद ‘अहासीत्’ असाधु है, यहाँ पर साधु प्रयोग ‘अहसीत्’ होगा; क्योंकि ‘हृयन्तक्षणश्वसजागृणिष्ठेदिताम्’ (पा० सू०-७.२.५) से क्रियमाण वृद्धि का निषेध हो जाता है ॥

१०६. बालकः फलानि विहाय मृत्तिकामबिभक्षत् ।

वाक्यार्थ— बच्चे ने फलों को छोड़कर मिट्टी खायी।

व्याकरण— प्रकृत में णिच् प्रत्यय के अनुपयोगी होने के फलस्वरूप शुद्ध क्रियापद ‘अभक्षत्’ होगा, ‘अबिभक्षत्’ यह अशुद्ध प्रयोग नहीं होगा ॥१०६॥

१०७. जननीदुर्घेन बालस्य कण्ठमार्द्दं बभूव ।

वाक्यार्थ— माता के दूध से बालक का कण्ठ आर्द्द हुआ।

व्याकरण— ‘कण्ठो गलोऽथ ग्रीवायाम्’— इस अमरकोशवचन के अनुसार ‘कण्ठ’ शब्द के पुँलिङ्ग होने के फलस्वरूप प्रकृत वाक्य में शुद्ध प्रयोग ‘कण्ठ आद्रें बभूव’ होगा; अतः ‘कण्ठमार्द्दं बभूव’ यह यहाँ अशुद्ध प्रयोग है ॥१०७॥

१०८. सुरापानेषु देशेषु ब्राह्मणा न यान्ति ।

वाक्यार्थ— सुरापान करने वाले देशों में ब्राह्मण नहीं जाते।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘सुरापानेषु’ यह अशुद्ध प्रयोग है, शुद्ध प्रयोग ‘सुरापाणेषु’ होगा; क्योंकि ‘पानं देशे’ (पा० सू०-८.४.९) के द्वारा ‘पान’ के नकार को णत्व होकर णकार हो जाता है ॥

१०९. कर्तृगामिनि क्रियापदे आत्मनेपदम् ।

वाक्यार्थ— कर्तृगामी क्रियापद (अर्थात् जिस क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त होता है) में आत्मनेपद का विधान होता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘कर्तृगामिनि’ पद असाधु है; यतः ‘कुमति च’ (पा० सू०-८.४.१३) से णत्वविधान किया गया है; अतः साधु स्वरूप ‘कर्तृगामिणि’ होगा । यद्यपि आचार्य पाणिनि द्वारा ‘प्रष्ठोऽग्रगामिनि’ (पा० सू०-८.३.९२) में पूर्व पद में णत्व के हेतुभूत रेफ के विद्यमान होते हुये भी णत्व का प्रयोग नहीं किये जाने के कारण कतिपय विद्वान् वाक्यपठित प्रयोग को भी साधु प्रयोग स्वीकार करते हैं ॥

११०. सा आर्द्धगोमयेण माषकुम्भवापेण च गृहं भूषयति ।

वाक्यार्थ— वह स्त्री गीले गोबर तथा माषकुम्भवाप से घर को भूषित करती है ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त ‘माषकुम्भवापेण’ पद असाधु है, इसके स्थान पर साधु प्रयोग ‘माषकुम्भवापेन’ होगा; क्योंकि ‘पदव्यवायेऽपि’ (पा० सू०-८.४.३७) से क्रियमाण णत्व का निषेध हो जाता है ॥११०॥

१११. नन्दप्राङ्गणसंस्थितो हरिरसौ सानन्दमाक्रीडति ।

वाक्यार्थ— नन्द के प्रांगण में स्थित ये हरि आनन्दपूर्वक खेलते हैं ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त परस्मैपदी क्रियापद ‘आक्रीडति’ अशुद्ध है, शुद्ध क्रियापद आत्मनेपदी ‘आक्रीडते’ होगा; क्योंकि पूर्व में ‘आङ्’ उपसर्ग की उपस्थिति होने पर ‘क्रीड’ धातु ‘क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च’ (पा० सू०-१.२:२१) से आत्मनेपदी हो जाता है ॥१११॥

११२. सारथिः तुरगैः रथं वाहयति ।

वाक्यार्थ— सारथी घोड़ों से रथ चलाता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘तुरगैः’ पद साधु नहीं है; अपितु इसके स्थान पर साधु पद ‘तुरगान्’ होगा; क्योंकि ‘गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ-शब्दकर्मकर्मकाणामणि कर्ता स णौ’ (पा० सू०-१.४.५२) से यन्त में ‘तुरग’ रूप प्रयोज्य कर्ता की प्राप्त नित्य कर्मसंज्ञा का यद्यपि उक्त सूत्र के साथ पठित ‘नीवद्योर्न’ वार्तिक द्वारा निषेध किया जाता है; परन्तु पुनः उक्त सूत्र के

साथ ही पठित ‘नियन्त्रूकर्तृकस्य वहेनिषेधः’ वार्तिक द्वारा अपने पूर्व वार्तिक द्वारा विहित कर्मसञ्चा-निषेध का पुनः निषेध कर दिये जाने के फलस्वरूप सूत्र की प्रवृत्ति हो जाती है और इस प्रकार तुरगरूप प्रयोज्य कर्ता की नित्य कर्मसञ्चा होती है; अतः प्रकृत वाक्य में ‘तुरगैः’ के स्थान पर ‘तुरगान्’ ही साधु प्रयोग होगा ॥११२॥

११३. सम्प्रति तां दयनीयां स्थितिं मां मा स्मारय ।

वाक्यार्थ— इस समय उस दयनीय स्थिति का स्मरण मुझे मत कराओ ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में द्वितीया एकवचन का ‘माम्’ पद असाधु है, इसके स्थान पर साधु पद तृतीया एकवचन का ‘मया’ होगा; यतः ‘दृशेश्व’ इस वार्तिक के सामर्थ्यवशात् ‘गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्मकाणामणि कर्ता स णौ’ (पा० सू०-१.४.५२) द्वारा विधीयमान कर्म हेतु ज्ञानसामान्य अर्थ में प्रयुक्त ‘बुद्धि’ शब्द का ही ग्रहण होता है; जबकि प्रकृत स्थल पर ज्ञानविशेष अर्थ गृहीत है; अतः ज्ञानविशेषार्थक स्मृ धातु के योग में प्रयोज्य कर्ता के अनुकूल होने के फलस्वरूप वह कर्ता तृतीयान्त ही रहेगा, द्वितीयान्त नहीं होगा ॥११३॥

११४. मनसा स्वर्गाय गच्छति ।

वाक्यार्थ— वह मन से स्वर्ग को जाता है ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में ‘स्वर्गाय’ पद साधु नहीं है, इसके स्थान पर साधु पद ‘स्वर्ग’ होगा; यतः ‘गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि’ (पा० सू०-२.३.१२) सूत्र से विधीयमान चतुर्थी विभक्ति की प्रवृत्ति चेष्टारूप अर्थ अभिप्रेत होने पर ही होती है; जबकि प्रकृत में चेष्टारूप अर्थ अभिप्रेत ही नहीं है; अतः यहाँ उक्त सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होने पर ‘कर्मणि द्वितीया’ (पा० सू०-२.३.२) की प्रवृत्ति होने के परिणामस्वरूप द्वितीया द्वितीया विभक्ति होकर ‘स्वर्ग’ प्रयोग बनेगा, जो कि ‘स्वर्गाय’ के स्थान पर शुद्ध प्रयोग होगा ॥११४॥

११५. दास्यै वस्त्रं संयच्छति कामुकः ।

वाक्यार्थ— कामी पुरुष दासी को वस्त्र देता है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में चतुर्थ्यन्त 'दास्यै' पद असाधु है; क्योंकि 'अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया'— इस भाष्यवचन के अनुसार चतुर्थ्यर्थ में तृतीया विभक्ति होती है; अतः यहाँ पर साधु पद 'दास्या' होगा ॥११५॥

११६. तस्यां पुस्तकानां ग्रन्थौ बहुमूल्यानि पुस्तकानि सन्ति ।

वाक्यार्थ— उस पुस्तकों की गठरी में अनेक बहुमूल्य पुस्तकें हैं।

व्याकरण— 'ग्रन्थिनौ पर्वपरुषी'— इस अमरकोशवाक्य के अनुसार 'ग्रन्थि' शब्द के पुँलिङ्ग होने के फलस्वरूप उसके लिये प्रयुक्त किया जाने वाला विशेषण भी पुँलिङ्ग ही होगा; अतः प्रकृत में 'ग्रन्थौ' के विशेषणस्वरूप प्रयुक्त 'तद्' शब्द के सप्तमी एकवचन का पुँलिङ्ग रूप 'तस्मिन्' ही साधु प्रयोग होगा, स्त्रीलिङ्ग रूप 'तस्याम्' साधु प्रयोग नहीं होगा ॥११६॥

११७. मैत्रो नारायणार्चनाय नितरां कुशलोऽस्ति ।

वाक्यार्थ— मैत्र नारायण की अर्चना में अत्यन्त कुशल है।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त 'नारायणार्चनाय' असाधु प्रयोग है, इसके स्थान पर साधु प्रयोग 'नारायणार्चनस्य' अथवा 'नारायणार्चने' होगा; क्योंकि प्रकृत में 'आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्' (पा० सू०-२. ३.४०) की प्रवृत्ति होने के फलस्वरूप षष्ठी या सप्तमी विभक्ति का ही प्रयोग किया जाना युक्तियुक्त होगा ॥११७॥

११८. द्वादशवर्षं पठित्वा व्याकरणम् आचार्यपदवीं लब्धवानयम् ।

वाक्यार्थ— इसने बारह वर्षों तक व्याकरण पढ़कर आचार्य की पदवी प्राप्त की है।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त 'द्वादशवर्ष' पद का प्रयोग असाधु है; क्योंकि व्याकरण शास्त्राध्ययन में 'आचार्य' उपाधि की प्राप्तिरूप फल की उपलब्धि का उल्लेख होने के कारण 'अपवर्गे तृतीया' (पा० सू०-२.३.६) की प्रवृत्ति होने के फलस्वरूप प्रकृत में 'द्वादशवर्ष' शब्द से तृतीया विभक्ति होगी; अतएव यहाँ साधु प्रयोग 'द्वादशवर्षेण' होगा ॥

११९. युद्धाङ्गं भीरुस्थानं भवति किम् ?

वाक्यार्थ— युद्ध का क्षेत्र क्या कायरों के रहने का स्थान होता है ?

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘भीरुस्थानम्’ पद असाधु है, इसके स्थान पर साधु प्रयोग ‘भीरुष्ठानम्’ होगा; यतः यहाँ पर ‘भीरोः स्थानम्’ (पा० सू०-८.३.८१) की प्रवृत्ति होने के परिणामस्वरूप ‘स्थान’ शब्द के सकार को मूर्धन्यादेश (ष) हो जायेगा और तदनुरूप ही ‘ष्टुना ष्टुः’ (पा० सू०-८.१.४१) की प्रवृत्ति होने से थकार को ष्टुत्व होकर ठकार हो जायेगा; फलस्वरूप साधु प्रयोग ‘भीरुष्ठानम्’ बनेगा ॥११९॥

१२०. तत्पुष्पमङ्गुलिसङ्घेन म्लानमभूत् ।

वाक्यार्थ— वह पुष्प अंगुली के संस्पर्श से म्लान हो गया ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘अङ्गुलिसङ्घेन’ प्रयोग असाधु है; क्योंकि यहाँ पर ‘समासेऽङ्गुलेः सङ्घः’ (पा० सू०-८.३.८०) की प्रवृत्ति होने के फलस्वरूप ‘सङ्घ’ शब्दघटक सकार को नित्य मूर्धन्यादेश होकर षकार हो जायेगा एवं ‘अट्कुप्वाङ्नुम्ब्यवायेऽपि’ (पा० सू०-८.४.२) की प्रवृत्ति होने के फलस्वरूप नकार के स्थान पर णत्व होकर णकार हो जायेगा । इस प्रकार पद का साधु स्वरूप ‘अङ्गुलिषङ्घेण’ होगा ॥१२०॥

१२१. पितृच्छात्रादहं व्याकरणमपठम् ।

वाक्यार्थ— पिताजी के छात्र से मैंने व्याकरण पढ़ा ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘पितृच्छात्रात्’ पद असाधु है; यतः ‘ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः’ (पा० सू०-६.३.२३) की प्रवृत्ति होने के फलस्वरूप यहाँ पर अलुक् समास होगा, जिसके कारण पद का साधु स्वरूप ‘पितुश्छात्रात्’ होगा ॥१२१॥

१२२. अस्ति कालो यद् भुङ्गं भवान् ।

वाक्यार्थ— यही समय है कि आप भोजन करें ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘भुङ्गम्’ क्रियापद साधु नहीं है; यतः उपपदस्वरूप ‘यद्’ शब्द की उपस्थिति होने के फलस्वरूप यहाँ पर ‘लिङ्घदि’ (पा० सू०-३.३.१६८) की प्रवृत्ति होगी, जिसके कारण नित्य लिङ् लकार

होगा; अतः साधु क्रियापद 'भुञ्जीत्' होगा, 'भुङ्गम्' असाधु प्रयोग ही होगा ॥१२२॥

१२३. अस्य युवकस्य मुखे राजवर्चों भासते ।

वाक्यार्थ— इस युवक के मुख पर राजा का तेज चमकता है (प्रकाशित होता है) ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त 'राजवर्चः' पद असाधु है; इसके स्थान पर साधु प्रयोग 'राजवर्चसम्' होगा; यतः यहाँ पर 'ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः' (पा० सू०-५.४.७८) के साथ पठित 'पल्यराजभ्याञ्चेति वक्तव्यम्' वार्त्तिक की प्रवृत्ति होकर नित्य अच् प्रत्यय की उपस्थिति होगी ॥१२३॥

१२४. साधु विक्रामति हयः ।

वाक्यार्थ— घोड़ा ठीक चल रहा है ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त परस्मैपदी क्रियापद 'विक्रामति' असाधु है; साधु क्रियापद आत्मनेपदी 'विक्रमते' होगा; यतः 'वि' उपसर्गपूर्वक 'क्रमु' धातु 'वे: पादविहरणे' (पा० सू०-१.३.४१) की यहाँ पर प्रवृत्ति होने के फलस्वरूप नित्य आत्मनेपद हो जाता है ॥१२४॥

१२५. शिष्यमनुजिज्ञासते गुरुः ।

वाक्यार्थ— गुरु शिष्य के मन की बातों को जानना चाहते हैं ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त आत्मनेपदी क्रियापद 'अनुजिज्ञासते' असाधु है; इसके स्थान पर साधु क्रियापद परस्मैपदी 'अनुजिज्ञासति' होगा; यतः सन्त्रन्त 'ज्ञा' धातु से क्रियमाण आत्मनेपद का 'नानोर्जः' (पा० सू०-१.३.५८) से निषेध हो जाता है ॥१२५॥

१२६. अहं श्वः क्षिप्रं धान्यं वप्तास्मि ।

वाक्यार्थ— मैं कल शीघ्र ही धान बोने वाला हूँ ।

व्याकरण— उपर्युक्त वाक्य में प्रयुक्त क्रियापद लुट् लकार का 'वप्तास्मि' असाधु प्रयोग है; साधु प्रयोग लृट् लकार का 'वप्स्यामि' होगा; यतः वाक्यमध्य में प्रयुक्त 'श्वः' शब्द के अनद्यन भविष्यत् का ज्ञापक होने के कारण सामान्यतया तो लुट् लकार का प्रयोग उचित प्रतीत होता है; लेकिन विशेषादेशविधायक

‘क्षिप्रवचने लृट्’ (पा० सू०-३.३.१३३) की प्रवृत्ति होने के परिणामस्वरूप यहाँ पर लृट् लकार का प्रयोग ही युक्तियुक्त है ॥१२६॥

१२७. सम्भावयामि यद्गोक्ष्यतेऽत्रभवान् ।

वाक्यार्थ— आप जो भोजन करेंगे, उसे मैं तैयार कर रहा हूँ ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त लृट् लकार का क्रियापद ‘भोक्ष्यते’ असाधु प्रयोग है; साधु प्रयोग लिङ् लकार का क्रियापद ‘भुञ्जीत’ होगा; यतः ‘विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि’ (पा० सू०-३.३.१५५) यद्यपि ‘लृट्’ एवं ‘लिङ्’ दोनों ही लकारों का विधान विकल्प से करता है; परन्तु ‘यद्’ शब्द का योग होने पर अपने द्वारा विहित आदेश का निषेध भी करता है; अतः प्रकृत वाक्य में ‘यद्’ शब्द का प्रयोग होने के फलस्वरूप ‘लिङ्ग्यदि’ (पा० सू०-३.३.१६८) से नित्य लिङ् लकार का प्रयोग ही साधु प्रयोग होगा ॥१२७॥

१२८. अस्मिन् महर्घे काले बहूपत्यता दुःखदायिका ।

वाक्यार्थ— इस मँहगाई के समय में अनेक सन्तान का होना कष्टदायक है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘महर्घे’ शब्द का प्रयोग असाधु है; यतः ‘आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः’ (पा० सू०-६.२.४६) महत् शब्द को आत्म होने पर ‘महा + अर्घे’ ऐसी स्थिति होने पर ‘अकः सवर्णे दीर्घः’ (पा० सू०-६.१.१०१) से दीर्घ एकादेश होकर निष्पत्र ‘महर्घे’ शब्द का प्रयोग यहाँ साधु होगा ॥१२८॥

१२९. अपकिरति नदी कूलं हृष्टो महोक्षः ।

वाक्यार्थ— स्वस्थ वृद्ध व्यक्ति नदी के किनारे को तोड़ रहा है ।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त परस्मैपदी क्रियापद ‘अपकिरति’ असाधु प्रयोग है, साधु प्रयोग आत्मनेपदी क्रियापद ‘अपस्थिरते’ होगा; यतः यहाँ पर विक्षेपार्थक ‘कृ’ से धातु से ‘क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च’ (पा० सू०-१.३.२१) के साथ पठित ‘किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वाच्यम्’ वार्तिक द्वारा आत्मनेपद का विधान होने के पश्चात् धातु के अव्यवहित पूर्व में ‘अप’ उपसर्ग की उपस्थिति होने के फलस्वरूप ‘अपच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने’ (पा० सू०-

६.१.१४२) की प्रवृत्ति होने के कारण सुट् का आगम होगा, जिसके परिणामस्वरूप साधु क्रियापद ‘अपस्किरते’ ही होगा ॥१२९॥

१३०. गाणपत्यस्य मन्त्रस्य जपमनुतिष्ठति विप्रः ।

वाक्यार्थ— ब्राह्मण गणपति के मन्त्र का जप कर रहा है।

व्याकरण— प्रकृत वाक्य में प्रयुक्त ‘गाणपत्यस्य’ प्रयोग असाधु है, साधु प्रयोग ‘गाणपतस्य’ होगा; यतः ‘गणपति’ शब्द से ‘अश्वपत्यादिभ्यश्च’ (पा० सू०-४.१.८४) से अण् प्रत्यय होने के पश्चात् गणपति के इकार का ‘यस्येति च’ (पा० सू०-६.४.१४८) से लोप हो जाता है, जिसके परिणाम-स्वरूप साधु शब्दस्वरूप ‘गाणपतस्य’ ही होगा, ‘गाणपत्यस्य’ नहीं होगा ॥१३०॥

अभ्यर्थनम्

श्रीमद्भौदेन्द्रवंशे हरिचरणरजः पूरपूतान्तरात्मा
 दुर्गादत्ताभिधानः समजनि सुयशोभासिशोभाविशिष्टः ।
 तत्पुत्रः श्रीशपादाम्बुजयुगमधुलिट् तातपादोपसेवी
 अम्बादत्ताभिधानः सरुचि रचितवान् संस्कृताशुद्धिगद्यम् ॥
 ससाधुवादेन विजृम्भितानां कृपाकटाक्षैः समुदश्चितानाम् ।
 लेखस्त्वयं सद्गुचिरोचितानां स्यादास्पदं विज्ञविलोकितानाम् ॥

दोषज्ञा अपि विद्वांसः स्वीकुर्वन्तु गुणज्ञताम् ।
लेखं मदीयमालोक्य बालबोधविधायकम् ॥



व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्

कर्तृगुप्तम्

गौरीनखरसादृश्यश्रद्धया शशिनं दधौ ।
इहैव गोप्यते कर्ता वर्षेणापि न लभ्यते ॥१॥

श्लोकार्थ— भगवान् शङ्कर ने भगवती गौरी को प्रसन्न करने के लिये उनके पैर के नख की समानता रखने वाले चन्द्रमा को श्रद्धापूर्वक अपने मस्तक पर धारण किया। इसी स्थान पर कर्तृपद छिपा हुआ है, जो पूरे वर्ष भर ढूँढ़ने पर भी प्राप्त नहीं होता ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य कर्तृगुप्त का उदाहरण है। इस श्लोक में कर्तृपद शिव है, जिसका बोध ‘इहैव’ का विच्छेद करने पर होता है। ‘इहैव’ का विच्छेद ‘इह + एव’ न करके ‘इहा + एव’ करने पर ही छिपे हुये कर्तृपद का ज्ञान हो पाता है। भगवान् शिव का बोध कराने के लिये ‘इहा’ का विग्रह इस प्रकार किया जाता है—

इः कामः, तं हन्ति इति इहा अर्थात् शिवः । आशय यह है कि ‘इ’ का अर्थ है— काम; उस काम का जो वध करे, उसे ‘इहा’ कहा जाता है। स्पष्ट है कि काम का वध भगवान् शिव ने ही किया था; अतः प्रकृत श्लोक में कर्तृपद ‘इहा’ है ॥१॥

शरदिन्दुकुन्दध्वलं नगपतिनिलयं मनोहरं देवम् ।

यैः सुकृतं कृतमनिशं तेषामेव प्रसादयति ॥२॥

श्लोकार्थ— शरत्कालीन चन्द्रमा एवं कुन्दपुष्प की भाँति शुभ्र श्वेत पर्वतराज हिमालय पर निवास करने वाले भगवान् शङ्कर को उसी के ऊपर प्रसन्न होते हैं, जिसने मन से अहर्निश अच्छे कर्मों को किया हो। आशय यह है कि भगवान् शिव की भक्ति अहर्निश पुण्य करने वालों को ही प्राप्त होती है ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी कर्तृगुप्त का ही उदाहरण है। इसमें कर्तृपद

‘मनो’ गुप्त है। इसे प्रकट करने के लिये ‘मनोहरम्’ को एक पद न मानकर ‘मनः + हरम्’— इस प्रकार दो पद मानना चाहिये। यहाँ ‘मन’ का तात्पर्य ‘चित्त’ से समझना चाहिये ॥२॥

शेषभूषं स्मरारातिं सोमं सोमार्द्धशेखरम् ।
त्रम्बकं नमतां बिभ्रद् गौरीशं नः पुनातु गाम् ॥३॥

श्लोकार्थ— प्रणाम करने वाले हम लोगों की वाणी को आभूषणस्वरूप शेषनाग को धारण करने वाले, कामदेव के लिये भयोत्पादक, मस्तक पर अर्द्धचन्द्र को धारण करने वाले, त्रिनेत्रधारी भगवान् शङ्कर को उमासहित अपने पीठ पर वहन करने वाले नन्दी पवित्र करें ।

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी कर्तृगुप्त का ही उदाहरण है। इस पद्य में कर्तृपद ‘गौः’ है, जो ‘गौरीशम्’ में छिपा हुआ है। यहाँ ‘गौरीशं’ का विग्रह ‘गौरी + ईशम्’— इस प्रकार न करके ‘गौः = ईशम्’— इस प्रकार करना चाहिये; क्योंकि यह पद यहाँ गौरी के पति शंकर का वाचक नहीं है; अपितु गौ के स्वामी = नन्दी का वाचक है। अतः ‘गौः’ और ‘ईशम्’ को अलग-अलग पद मानकर पढ़ने से ‘गौः’ कर्तृपद सुतरां स्पष्ट हो जाता है ॥३॥

अन्नवस्त्रसुवर्णानि रत्नानि विविधानि च ।
ब्राह्मणेभ्यो नदीतीरे ददाति ब्रज सत्वरम् ॥४॥

श्लोकार्थ— धनी ब्राह्मण नदी के तट पर अन्न, वस्त्र, सुवर्ण एवं विविध रत्नों का दान कर रहा है, (अतएव) तुम भी शीघ्र जाओ ।

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी कर्तृगुप्त का ही उदाहरण है। इस श्लोक में कर्तृपद ‘ब्राह्मणेभ्यो’ है; क्योंकि यह यहाँ चतुर्थ्यन्त नहीं है; अपितु ‘ब्राह्मणश्चासौ इभ्यश्च’ किंवा ‘ब्राह्मणेषु इभ्यः’— इस प्रकार समस्त पद है। ‘इभ्य आद्यो धनी स्वामी’— इस अमरकोशवचन के अनुसार ‘इभ्य’ का अर्थ ‘सम्पन्न’ होता है; आशय यह है कि ब्राह्मण अतिशय धनी है ॥४॥

राक्षसेभ्यः सुतां हृत्वा जनकस्य पुरीं ययौ ।

अत्र कर्तृपदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥५॥

श्लोकार्थ— राक्षसों का स्वामी रावण जनक की पुत्री सीता का हरण कर

अपनी नगरी लङ्घा चला गया । यहाँ पर कर्तृपद छिपा हुआ है और उसे जो जानता है, वह निश्चय ही पण्डित है ।

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी कर्तृगुप्त का ही उदाहरण है । इसमें कर्तृपद ‘राक्षसेभ्यः’ है, जिसका विग्रह है— राक्षसानां इभ्यः अर्थात् राक्षसों का स्वामी, जो कि निश्चय ही रावण को जाना जाता है । ‘इभ्यः’ का अर्थ ‘स्वामी’ होता है, यह पूर्व श्लोक की व्याख्या में उल्लिखित अमरकोशवचन से स्पष्ट है । अतः स्पष्ट है कि प्रकृत पद्य में कर्तृपद का ज्ञान करने के लिये ‘राक्षसेभ्यः’ को चतुर्थी विभक्त्यन्त पद न मानकर समस्त पद स्वीकार करना होगा ॥५॥

प्रमोदं जनयत्येव सदा-रा गृहमेधिनः ।
यदि धर्मश्च कामश्च भवेतां सङ्गताविमौ ॥६॥

श्लोकार्थ— यदि धर्म और काम का समन्वय हो तो अर्थ भी गृहस्थों को सदा आनन्द प्रदान करता ही है ।

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी कर्तृगुप्त का ही उदाहरण है । इसमें कर्तृपद के रूप में ‘रा:’ का प्रयोग किया गया है; यतः ‘रा:’ का अर्थ ‘अर्थरैविभवा अपि’— इस अमरकोशवचन के अनुसार ‘धन’ है । इस कर्तृपद का ज्ञान करने के लिये श्लोक में प्रयुक्त ‘सदारा’ पद को ‘सदा’ एवं ‘रा’— इस प्रकार अलग-अलग करके पढ़ना होगा ॥६॥

कर्मगुप्तम्

देवत्राहि सदा भक्त्या वयं वन्दामहे मुहुः ।
येषां कृपाकटाक्षेण सफलाः सर्वकामनाः ॥७॥

श्लोकार्थ— जिनके कृपाकटाक्ष से समस्त कामनायें सफल हो जाती हैं, उन देवताओं की हम सदा-सर्वदा बार-बार भक्ति के साथ वन्दना करते हैं ।

व्याकरण— प्रकृत पद्य कर्मगुप्त का उदाहरण है । यहाँ प्रयुक्त ‘देवत्राहि’ पद को ‘देव! + त्राहि’ (अर्थात् हे देव! रक्षा करो) इस प्रकार पदच्छेद कर उच्चारण करने पर द्वितीयान्त पद का ज्ञान नहीं हो पाता; बल्कि ‘देवत्रा’ एवं ‘हि’ का पृथक्-पृथक् उच्चारण करने पर ‘देवत्रा’ अर्थात् ‘देवताओं को’ इस प्रकार कर्मपद सुस्पष्ट हो जाता है । द्वितीयान्त ‘देवान्’ अर्थ में ‘देव’ शब्द से

‘देवमनुष्यपुरुषपुरुमत्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्’ (पा० सू०-५.४.५६) से ‘त्रा’ प्रत्यय करने पर ‘देवत्रा’ शब्द की निष्पत्ति होती है, जो कि ‘देवताओं को’ इस द्वितीया विभक्ति के अर्थ का वाचक होता है ॥७॥

सुभग ! तवाननपङ्कजदर्शनसञ्चातनिर्भरप्रीतेः ।
शमयति कुर्वन् दिवसः पुण्यवतः कस्य रमणीयः ॥८॥

श्लोकार्थ— हे सुभग ! तुम्हारे मुखकमल का दर्शन कर अतिशय प्रसन्नता को प्राप्त करने वाले किस पुण्यात्मा को सुखी करता हुआ वह रमणीय दिवस व्यतीत होता है ?

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी कर्मगुप्त का ही उदाहरण है । यहाँ कर्म का वाचक पद ‘शम्’, जिसका अर्थ ‘सुख’ होता है, छिपा हुआ है । इस ‘शम्’ का ‘कुर्वन्’ के साथ एवं ‘दिवसः’ का शमयतिघटक ‘अयति’ के साथ अन्वय करने पर ‘शम्’ कर्मपद सुस्पष्ट हो जाता है ॥८॥

एहि हे रमणि ! पश्य कौतुकं धूलिधूसरतनुं दिगम्बरम् ।

सापि तद्वदनपङ्कजं पपौ भ्रातरुक्तमपि किं न बुद्ध्यते ॥९॥

श्लोकार्थ— हे सुन्दरि! यहाँ आओ और भूमि पर खेलते हुये नंग-धड़ंग; अतएव धूलि लिपटे शरीर वाले इस बच्चे को देखो । इस प्रकार कहने पर उस सुन्दरी ने भी उस बच्चे के मुखरूपी कमल को चूम लिया । यहाँ पर कर्मपद का कथन कर दिया गया है; फिर भी हे भ्रातः ! तुम उसे क्यों नहीं जान पा रहे हो ?

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी कर्मगुप्त का ही उदाहरण है । यहाँ कर्मवाचक पद ‘तुकं’ (अर्थात् शिशु को) ‘कौतुकं’ में छिपा हुआ है । इसका ज्ञान प्रप्त करने के लिये ‘कौतुकं’ पद को कुतूहल अर्थ का वाचक एक पद न समझकर ‘कौ’ अर्थात् भूमि पर एवं ‘तुकम्’ अर्थात् शिशु को— इस प्रकार अलग-अलग दो पद समझना चाहिये ॥९॥

शीकरासारसंवाहिसरोजवनमारुतः ।

प्रक्षोभयति पान्थस्त्रीनिःश्वासैरिव मांसलः ॥१०॥

श्लोकार्थ— पथिकों की विरह से व्याकुल पत्नियों के निःश्वासों से मांसल बना हुआ-सा यह प्रबल पवन जलकणों की धारा को वहन करनेवाले

अर्थात् जल से पूर्णतः भरे हुये इस तालाब को क्षुब्ध कर रहा है।

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी कर्मगुप्त का ही उदाहरण है। यहाँ छिपा हुआ कर्मवाचक पद है—‘सरो’। कासारः सरसी सरः’ इस अमरकोशवचनानुसार ‘सर’ तालाब को कहा जाता है। श्लोक में प्रयुक्त ‘शीकरासारसंवाहि’ पद कर्मवाचक ‘सरो’ का विशेषण है एवं ‘जवनमारुतः’ ‘प्रक्षोभयति’ क्रिया का कर्तृपद है। इस प्रकार समझने पर ‘सरः’ कर्मपद स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है ॥१०॥

शरतल्ये शयानाय भीष्माय बलिसद्गनः ।

अनैषीद्वारिषुः स्फीतं पवित्रं सव्यसाचिनः ॥११॥

श्लोकार्थ— धनुधरी अर्जुन के द्वारा छोड़ा गया बाण शरशय्या पर शयन कर रहे भीष्म के लिये बलि के गृह अर्थात् पाताल से स्वच्छ एवं पवित्र जल ले आया।

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी कर्मगुप्त का ही उदाहरण है। यहाँ छिपा हुआ कर्मपद ‘वार्’ है, जो कि ‘आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि’ इस अमरकोशवचन के अनुसार ‘जल’ का वाचक है। इसका ज्ञान ‘इषुः वार् अनैषीत्’ इस प्रकार से पदच्छेद करने पर स्वयमेव प्राप्त हो जाता है ॥११॥

करणगुप्तम्

पूतिपङ्कमयेऽत्यर्थं कासारे दुःखिता अमी ।

दुर्वारा मानसं हंसा गमिष्यन्ति धनागमे ॥१२॥

श्लोकार्थ— वर्षाकाल उपस्थित होने पर ये हंस गन्दले एवं कीचड़मय तालाब के कलुषित जल से अत्यधिक दुःखित होकर मानसरोवर को प्रस्थान कर जायेंगे।

व्याकरण— प्रकृत पद्य करणगुप्त का उदाहरण है। इसमें छिपा हुआ करणवाचक पद ‘दुर्वारा’, जिसका अर्थ ‘कलुषितवारिणा’ है। पूर्व श्लोक की हिन्दी व्याख्या में कथित अमरकोशवचन ‘आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि’ के अनुसार ‘वार्’ शब्द ‘जल’ का वाचक है और दुर्वार का तात्यर्थ है— कलुषित जल। इस ‘दुर्वारा’ पद का हंसों के विशेषणस्वरूप प्रयुक्त ‘अत्यर्थ दुःखिताः’ पद के साथ अन्वय करने पर यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है ॥

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

सम्प्रदानगुप्तम्

अम्भोरुहमये स्नात्वा वापीपयसि कामिनी ।
ददाति भक्तिसम्पन्ना पुत्रसौभाग्यकाम्यया ॥१३॥

श्लोकार्थ— भक्ति से सम्पन्न यह कामिनी स्त्री तालाब के जल में स्नान कर पुत्र और सौभाग्य की कामना से कामदेव के लिये कमलपुष्ट अर्पित कर रही है ।

व्याकरण— प्रकृत पद्य सम्प्रदानगुप्त का उदाहरण है । इस श्लोक में ‘अम्भोरुहमये’ में अनुस्यूत ‘अये’ पद सम्प्रदान का वाचक है । यह ‘अये’ पद ‘इकारः उच्यते कामः’— इस कोशवचन के अनुसार ‘काम’ का वाचक है । कामदेव के बोधक इस ‘इ’ शब्द से ‘घेडिंति’ (पा० सू०-६.३.१११) से गुण होकर चतुर्थी एकवचन में ‘अये’ शब्द निष्पन्न होता है । यहाँ प्रयुक्त ‘अम्भोरुहमये’ पद को ‘वापीपयसि’ का विशेषणस्वरूप एक पद न मान कर ‘अम्भोरुहम्’ एवं ‘अये’— इस प्रकार पदच्छेद करते हुये प्रथमतः पठित ‘अम्भोरुहम्’ को द्वितीयान्त एवं तदनन्तर पठित ‘अये’ को चतुर्थ्यन्त माना जाय तो छिपा हुआ सम्प्रदान स्वयमेव सुस्पष्ट हो जाता है ॥१३॥

अपादानगुप्तम्

दुराचारिबुधः श्लाघ्यः सच्चरित्रोऽबुधोऽपि चेत् ।
ब्रुवन्तु पाठका अत्र गुप्तं पञ्चमकारकम् ॥१४॥

श्लोकार्थ— सच्चरित्र व्यक्ति यदि विद्वान् न भी हो तो भी दुराचारी विद्वान् से श्रेष्ठ होता है । यहाँ पर जिस पद में पञ्चम अर्थात् अपादान कारक है, उसका पाठकगण निर्देश करें ।

व्याकरण— प्रकृत पद्य अपादानगुप्त का उदाहरण है । किवप् प्रत्ययान्त बुध् धातु से निष्पन्न हलन्त बुध् शब्द का पञ्चमी विभक्ति में ‘बुधः’ रूप होता है । इस प्रकार यहाँ प्रयुक्त ‘दुराचारिबुधः’ पद पञ्चम्यन्त है, जिसे भ्रमवश प्रथमान्त मान लेने पर ‘दुराचारी विद्वान् श्लाघ्य है’ इस अनिष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है ॥१४॥

शिलीमुखैस्त्वया वीर! दुवरैर्निर्जितो रिपुः ।
बिभेत्यत्यन्तमलिनो वनेऽपि कुसुमाकुले ॥१५॥

श्लोकार्थ— हे वीर ! तुम्हारे दुःसह शिलीमुखों अर्थात् बाणों से विजित किया गया शत्रु पुष्पों से व्याप्त वन में भी शिलीमुखों अर्थात् भ्रमरों से (नाम में समानता के कारण) अत्यधिक भयभीत होता है ।

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी अपादानगुप्त का ही उदाहरण है । यहाँ प्रयुक्त अत्यन्तमलिनो में स्थित ‘अलिनो’ पद छिपा हुआ अपादान कारक है । यह ‘अत्यन्तमलिनो’ पद ‘रिपुः’ इस प्रथमान्त पद का विशेषण नहीं है; अपितु इसमें दो पद हैं— ‘अत्यन्तम्’ एवं ‘अलिनः’ । इनमें से प्रथम पद ‘अत्यन्तम्’ ‘बिभेति’ इस क्रिया का विशेषणस्वरूप है एवं ‘अलिनो’ ‘भीत्रार्थानां भयहेतुः’ (पा० सू०-१.४.२५) के अनुसार भय का हेतुरूप अपादान कारक है ॥

सम्बन्धगुप्तम्

भानुर्वै जायते लक्ष्म्या सरस्वत्याथवा मता ।
अत्र षष्ठीपदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥१६॥

श्लोकार्थ— मनुष्य को अभीप्सित कान्ति लक्ष्मी अथवा सरस्वती से प्राप्त होती है । इस पद्यखण्ड में षष्ठी विभक्ति का पद छिपा हुआ है । उसे जो जानता है, वही पण्डित है ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य सम्बन्धगुप्त का उदाहरण है । इसमें पठित ‘भानुर्वै’ में अनुस्यूत पुरुषवाचक ऋदन्त ‘नृ’ शब्द से ‘ऋत उत्’ (पा० सू०-६.१. १११) से उत्त्व होकर षष्ठी एकवचन में निष्पत्र ‘नुः’ शब्द, जिसका अर्थ ‘नरस्य’ है, ‘पुरुषः पूरुषा नरः’ इस अमरकोशवचन के अनुसार पुरुष अर्थ का वाचक है । यहाँ पठित ‘भानुः’ को एक पद न मानकर श्लोक का अर्थ इस प्रकार करना चाहिये— नुः = नरस्य, मता = अभीप्सिता, भा = कान्ति, लक्ष्म्या = श्रिया अथवा = वा, सरस्वत्या = विद्यया, जायते = भवति । इस प्रकार अर्थ करने पर ‘नुः’ पद में छिपी हुई षष्ठी स्वयमेव सुस्पष्ट हो जाती है ॥१६॥

नाकर्णितो मयादेशः तेन दण्डं स लब्धवान् ।
वैयाकरणमूर्धन्य ! षष्ठीमत्र प्रदर्शय ॥१७॥

श्लोकार्थ— मेरा आदेश नहीं सुना, इसलिये उसने दण्ड पाया । हे व्याकरण के मूर्धन्य विद्वानों ! इस पद्यखण्ड में छिपी हुई षष्ठी विभक्ति को प्रदर्शित करें ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी सम्बन्धगुप्त का ही उदाहरण है । यहाँ पर ‘मयादेशः’ पद को यदि ‘मया + आदेशः’— ऐसा विग्रहात्मक समझेंगे तो अनीप्सित अर्थ की प्राप्ति होगी; अतएव पूर्वोक्त प्रकार से विग्रह न करके ‘मे + आदेशः’— ऐसा विग्रह समझना चाहिये । इस प्रकार विग्रह कर ‘एचोऽयवायावः’ (पा० सू०-६.१.७८) से ‘अय्’ आदेश होकर यह ‘मयादेशः’ शब्द निष्पत्र हुआ है । मयादेशःघटक यह ‘मे’ षष्ठी विभक्ति का रूप है । ‘अय्’ आदेश के यकार का लोपविधायक शास्त्र ‘लोपः शाकल्यस्य’ (पा० सू०-८.३.१९) की प्रवृत्ति वैकल्पिक होती है; अतः प्रकृत में यकारलोप न करने में किसी प्रकार का कोई दोष भी उपस्थित नहीं होता । इस प्रकार स्पष्ट है कि ‘मयादेशः’ में छुपा हुआ ‘मे’ ही सम्बन्धवाचक पद है ॥१७॥

**प्राप्तमदो मधुमासः प्रबला रुक् प्रियतमोऽपि दूरस्थः ।
असती सन्निहितेयं संहृतशीला सखी नियतम् ॥१८॥**

श्लोकार्थ— चन्द्रमा के मधु (चाँदनी) रूपी मद को पाकर मेरा रोग (कामव्यथा) प्रबल हो गया है । (मेरा) प्रियतम भी दूर स्थित है अर्थात् पास में नहीं है और समीपस्थित मेरी यह सखी निश्चय ही दुराचारिणी तथा कुलटा है (इस कारण कामपरवश होने के फलस्वरूप मुझे उपपति (अन्य पुरुष) का आश्रयण करना ही पड़ेगा) ।

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी सम्बन्धगुप्त का ही उदाहरण है । यहाँ पठित ‘मधुमासः’ पदघटक ‘मासः’, जो कि ‘उत्पलिनी कोश’ के ‘मासशब्दः केवलोऽपीह सम्मतो बहुदृश्वनाम्’ डुस वचन के अनुसार चन्द्रमा के वाचक ‘मास्’ शब्द से निष्पत्र है, छिपा हुआ षष्ठ्यन्त पद है । इसकी निष्पत्ति इस प्रकार समझनी चाहिये— ‘मिमीते आनन्दमिति माः, तस्य मासः’ ॥१८॥

अधिकरणगुप्तम्

**अनुकम्पितदिग्वक्त्रोऽयुग्मवक्त्रोऽयुगेक्षणः ।
गङ्गाञ्चितजटाजूटो गिरीशो वसतान्मुहुः ॥१९॥**

श्लोकार्थ— प्रकृत पद्य में ‘दिग्वक्त्रः’ शब्द का प्रयोग लङ्घानरेश रावण के लिये किया गया है; यतः दिशायें प्राची-प्रतीची आदि भेद से दश प्रकार की होती हैं और रावण भी दश मुखों से समन्वित था।

श्लोकार्थ इस प्रकार है— रावण पर अनुग्रह करने वाले, पाँच मुखों से समन्वित, तीन नेत्रों को धारण करने वाले एवं अपने जटाजूट में गङ्गा को समाहित करने वाले भगवान् शिव (मेरी) वाणी में सतत् निवास करें।

व्याकरण— प्रकृत पद्य अधिकरणगुप्त का उदाहरण है। इस पद्य में प्रयुक्त ‘गिरीशो’ पद में छिपा हुआ ‘गिरि’ ‘वसतात्’ क्रिया के अधिकरण कारक का बोधक है, जिसकी प्रतीति ‘गिरि + ईशो’ (शिवः) इस प्रकार पदच्छेद करने पर स्वयमेव हो जाती है। सप्तम्यन्त यह ‘गिरि’ शब्द रूप में वाणी का वाचक है। यदि ‘गिरिशो’ को प्रथमान्त पद स्वीकार किया जायेगा तो उससे कर्तारूप भगवान् शिव का बोध होगा और ऐसा होने पर ‘वसतात्’ क्रिया यहाँ अधिकरणविहीन होगी, जो कि कवि को कथमपि अभीष्ट नहीं हो सकता ॥१९॥

विपद्यमानता सिद्धा सर्वस्यैव निरूप्यणः ।

यथात्र भस्म पद्ध्यां च निर्वाणं हन्त्ययं जनः ॥२०॥

श्लोकार्थ— आपत्ति में पड़े हुये तेजोविहीन समस्त व्यक्तियों की अवहेलना (तिरस्कार) होती ही है। जैसे कि बुझी हुई राख को लोग पैरों से प्रताड़ित करते हैं ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी अधिकरणगुप्त का ही उदाहरण है। यहाँ पठित ‘विपद्य-मानता’ में अनुस्यूत ‘विपदि’ पद में अधिकरण कारक छिपा हुआ है। इस ‘विपद्यमानता’ पद को एक पद न समझ कर ‘विपदि’ को सिद्धा क्रियार्थक सुबन्त शब्द के कर्तृपद ‘अमानता’, जिसका तात्पर्य अवहेलना से है, से अलग करके यदि पढ़ा जाय तो यह स्वयमेव सुस्पष्ट हो जाता है ॥२०॥

सम्बोधनगुप्तम्

पिबतस्ते शरावेण वारि कह्लारशीतलम् ।

केनेमौ दुर्विदग्धेन हृदये सन्निरोपितौ ॥२१॥

श्लोकार्थ— हे मृग ! सुगन्धित पुष्पों से शीतल जल का पान करते हुये

तुम्हारे हृदय में किस दुष्ट ने ये दो बाण अरोपित कर दिये ?

व्याकरण— प्रकृत पद्य सम्बोधनगुप्त का उदाहरण है। यहाँ पठित ‘शरावेण’ पद में अनुस्यूत ‘एण’ पद सम्बोधन का वाचक है। ‘शरावेण’ का ‘शरौ + एण’ इस प्रकार यदि विग्रह किया जाय तो ‘एण’ सम्बोधनवाचक पद है, यह स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है ॥२१॥

बटवृक्षो महानेष मार्गमावृत्य तिष्ठति ।
तावत्त्वया न गन्तव्यं यावन्नान्यत्र गच्छति ॥२२॥

इलोकार्थ— हे बटो (बालक) ! विशाल शरीर वाला यह ऋक्ष (रीछ) रास्ते को रोककर खड़ा है, जब तक यह दूसरी जगह न चला जाय, तब तक तुम्हें नहीं जाना चाहिये ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी सम्बोधनगुप्त का ही उदाहरण है। यहाँ ‘बटवृक्षो’ को एक पद न समझकर ‘बटो’ एवं ‘ऋक्षो’ इस तरह से अलग-अलग दो पद समझना चाहिये। इस प्रकार ‘बटवृक्षो’ में अनुस्यूत ‘बटो’ (हे बालक !) पद यहाँ सम्बोधन का वाचक है। इस ‘बटवृक्षो’ का अर्थ यहाँ ‘बरगद का वृक्ष’ नहीं समझना चाहिये; बल्कि उक्त विग्रह की दशा में ‘बटो’ के ओकार को ‘एचो-ऽयवायावः’ (पा० सू०-६.१.७८) से ‘अव्’ करके यह ‘बटवृक्षो’ शब्द निष्पत्र हुआ है, जिसका तात्पर्य बालक एवं ऋक्ष से है ॥२२॥

सन्धिगुप्तम्

न मयागोरसाभिज्ञं चेतः कस्मात्प्रकुप्यसि ? ।
अस्थानरुदितैरतैरलमालोहितेक्षणे ! ॥२३॥

इलोकार्थ— क्रोध से रक्तवर्ण हो रहे नेत्रों वाली हे सुन्दरि ! मेरा हृदय अपराध के रस से परिचित नहीं है। मैं अपराधी नहीं हूँ, तुम क्यों क्रोधित हो रही हो, विना मतलब रुदन मत करो ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य सन्धिगुप्त का उदाहरण है। यहाँ पठित ‘मयागोरसाभिज्ञं’ में ‘मे + आगोरसाभिज्ञं’ इस प्रकार विग्रह करके ‘एचोऽयवायावः’ (पा० सू०-६.१.७८) से अयादेश सन्धि की गई है। यलोपविधायक शास्त्र ‘लोपः शाकल्यस्य’ के वैकल्पिक होने से यहाँ यलोप नहीं हुआ है। सन्धिकृत

वाक्यघटक ‘मे’ का अन्वय ‘चेतः’ पद के साथ करना चाहिये। ‘आगोरसाभिज्ञं’ में प्रयुक्त ‘आगः’ पद का अर्थ ‘आगोऽपराधो मन्तुश्च’ इस अमरकोशवचन के अनुसार ‘अपराध’ स्वयंसिद्ध ही है ॥२३॥

लिङ्गगुप्तम्

नितान्तस्वच्छहृदयं सखि ! प्रेयान् समागतः ।
त्वां चिराद्वर्णनप्रीत्या यः समालिङ्ग्य रंस्यते ॥२४॥

श्लोकार्थ— हे सखि! अत्यधिक समय के पश्चात् देखने के फलस्वरूप उत्पन्न प्रेमा-तिशय से आलिङ्गन कर तुम्हारा स्मरण करने वाले नितान्त स्वच्छ हृदय वाले तुम्हारे प्रियतम यह आ गये ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य लिङ्गगुप्त का उदाहरण है। यहाँ पठित ‘नितान्त-स्वच्छहृदयं’ सहसा क्रियाविशेषण के समान प्रतीत होता है; परन्तु ‘प्रेयान्’ के विशेषणभूत ‘नितान्तस्वच्छहृत्’ एवं सर्वनाम शब्द ‘अयं’ को पदच्छेद करते हुये पढ़ने पर छिपा हुआ लिङ्ग स्वयमेव सुस्पष्ट हो जाता है ॥२४॥

क्रियागुप्तम्

जानकी-जानकीजानी श्रद्धयाभक्त लक्ष्मणः ।
भाव! भावोऽस्य को गूढो ब्रूहि चेदवगच्छसि ॥२५॥

श्लोकार्थ— लक्ष्मण ने श्रद्धापूर्वक ‘जानकी-जानकीजानी’ (सीता एवं राम) की सेवा की। हे भाव (भद्रपुरुष) ! प्रकृत वाक्य में छिपे हुये अभिप्राय को यदि तुम जानते हो तो कहो ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य क्रियागुप्त का उदाहरण है। यहाँ ‘अभक्त’ अर्थात् ‘सेवा की’ यह क्रियापद अनुस्यूत है, जो ‘श्रद्धयाभक्त’ को ‘श्रद्धया’ और ‘अभक्त’ इस प्रकार से अलग-अलग करके पढ़ने पर स्पष्ट होता है, ‘श्रद्धया + भक्त’ इस प्रकार से पढ़ने पर स्पष्ट नहीं होता। सेवा अर्थ वाले ‘भज्’ धातु से लुड़ लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन में ‘अभक्त’— यह क्रियापद निष्पन्न होता है। यहाँ प्रयुक्त एवं सामान्यतया दृष्टिगोचर होने वाले ‘भक्त’ शब्द को ‘लक्ष्मणः’ का विशेषण नहीं समझना चाहिये। ‘जानकी-जानकीजानी’ को इस प्रकार द्वन्द्व

समास समझना चाहिये— जानकी जाया यस्य, असौ जानकीजानिः; जानकी च
स चेति ॥२५॥

**प्रातः प्रातः समुत्थाय द्वौ मुनी च कमण्डलू ।
अत्र क्रियापदं वक्तुमवधिर्ब्रह्मणो वयः ॥२६॥**

श्लोकार्थ— प्रातःकाल उठ करके दो मुनि कमण्डलु भरते हैं । इस पद्य
में (छिपे) क्रियापद किया का ज्ञान प्राप्त करने के लिये ब्रह्मा की आयु के
बराबर आयु होनी चाहिये ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी क्रियागुप्त का ही उदाहरण है । पूरणार्थक
'प्रा' धातु से लट् लकार, प्रथम पुरुष, द्विवचन में निष्पत्र 'प्रातः' शब्द यहाँ
क्रियापद है, जिसका अर्थ 'भरते हैं' होता है ॥२६॥

**पम्पासरसि रामेण सस्नेहं-सविलासया ।
सीतया किं कृतं सार्वमत्रैवोत्तरमीक्ष्यताम् ॥२७॥**

श्लोकार्थ— पम्पा सरोवर (के तट) पर राम ने 'सविलासया' अर्थात्
विलासमयी सीता के साथ अर्थात् 'सस्नेहं' स्नेहपूर्वक क्या किया ? इसका
उत्तर इसी जगह पर ढूँढ़ें ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य में एक प्रश्न किया गया है, जिसका उत्तर भी
इसी पद्य में अनुस्यूत है; लेकिन उसको जान पाना सहज नहीं है । यहाँ पठित
'सस्नेहं-सविलासया' का अन्वय श्लोकार्थ ज्ञात करने हेतु 'सीतया' के साथ
किया जाता है और 'सस्नेहं सविलासया' इस प्रकार पदच्छेद करके पढ़ा जाता
है; परन्तु प्रश्नार्थ का ज्ञान प्राप्त करने के लिये 'सस्ने हंसविलासया' इस प्रकार
पदच्छेद करना पड़ेगा । फलस्वरूप 'हंसविलासया' का अन्वय 'सीतया' पद के
साथ होगा, जिसका अर्थ होगा— 'हंस के समान गमन करने वानी सीता ।'
शेष प्रथम पद 'सस्ने' स्नानार्थक 'ष्णा' धातु के लिट् लकार प्रथम पुरुष
एकवचन का रूप है, जिसका अर्थ होता है— 'स्नान किया' और यही
श्लोकगत प्रश्न का उत्तर है ॥२७॥

**कान्तया कान्तसंयोगे किमकारि नवोढया ।
अत्रापि चोत्तरं वक्तुमवधिर्ब्रह्मणो वयः ॥२८॥**

श्लोकार्थ— प्रियतम का प्रिया के साथ मिलन होने पर (उस प्रियतम की) नवोढा (नवपरिणीता) सुन्दरी ने क्या किया ? यहाँ भी उत्तर खोजने के लिये ब्रह्मा की आयु के बराबर आयु अपेक्षित है ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी प्रश्नात्मक है, जिसका उत्तर भी यहीं पर छिपा हुआ है; लेकिन उसे जानने के लिये महान् बुद्धिकौशल की आवश्यकता है । पद्य में पठित ‘अत्रापि’ पद को ‘अत्र + अपि’ अर्थात् ‘यहाँ भी’ इस अर्थ को ध्वनित करने वाला न मानकर लज्जार्थक ‘त्रपूष्’ से भाव अर्थ में लुड़ लकार का निष्पत्र रूप ‘अत्रापि’ माना जाय, तो स्वयमेव उत्तर की प्राप्ति हो जाती है । अत्रापि का अर्थ होता है ‘लज्जित हुई’ और यही श्लोकगत प्रश्न का भी उत्तर है ॥२८॥

पतितैः सलिले सिन्धोः किं कृतं तैलबिन्दुभिः ।

अत्रापि चोत्तरं वकुं वेलाऽयुर्ब्रह्मणो मता ॥२९॥

श्लोकार्थ— नदी के जल में गिरी हुई तैलबिन्दुओं ने क्या किया ? यहाँ भी उत्तर का कथन करने के लिये ब्रह्मा की आयु को समयसीमा माना गया है ।

व्याकरण— प्रकृत पद्य भी प्रश्नात्मक है, जिसका उत्तर भी पद्य में ही तिरोभूत है । यहाँ पर भी ‘अत्रापि’ पद को ‘अत्र + अपि’ अर्थात् ‘यहाँ भी’ इस अर्थ का वाचक न समझकर ‘अत्र + आपि’ इस प्रकार पृथक्-पृथक् करके पढ़ा जाय तो ‘तैलबिन्दुभिः वेला आपि’ इस तरह से अन्वय करने पर प्रश्न का उत्तर स्पष्ट हो जाता है । ‘आपि’ यह व्याप्त्यर्थक ‘आप्ल’ धातु के लुड़ लकार का रूप है, जिसका अर्थ होता है— फैल जाना । यह भी ध्यान रखने योग्य है कि यहाँ प्रयुक्त ‘वेला’ शब्द ‘अब्ध्यम्बुविकृतौ वेला कालमर्यादयोरपि’ इस अमरकोशवचन के अनुसार ‘काल’ और ‘तट’ दोनों ही अर्थों का वाचक है । फलस्वरूप उत्तर स्पष्ट है कि ‘तैलबिन्दुये नदी-वेला (नदी के तट) तक फैल गई’ ॥२९॥

पुंस्कोकिलकुलस्यैते नितान्तमधुरारवैः ।

सहकारद्वुमा रम्या वसन्ते कामपि श्रियम् ॥३०॥

श्लोकार्थ— कोकिल-समूहों की ध्वनि के कारण सुन्दर आम्रवृक्षों ने वसन्त ऋतु में किसी अलौकिक शोभा को धारण किया ।

व्याकरण— प्रकृत श्लोक में क्रियापद ‘नितान्तमधुरारवैः’ पद में छिपा हुआ है, जिसका ज्ञान प्राप्त करने के लिये उक्त पद का सहजतया प्रतीत अर्थ—‘अत्यन्त सुमधुर ध्वनियों द्वारा’ भासित होता है; लेकिन इससे वाक्य के क्रियापद का ज्ञान नहीं हो पाता। क्रियापद का ज्ञान प्राप्त करने के लिये ‘नितान्तम् अधुः आरवैः’ इस प्रकार अन्वय करना श्रेयस्कर होगा। धारण-पोषणार्थक ‘डुधाज्’ धातु के लुङ् लकार का रूप ‘अधुः’ है, जिसका अर्थ ‘धारण किया’ होता है ॥३०॥

बिम्बाकारं सुधाधारं कान्तावदनपङ्कजम् ।

अत्र क्रियापदं गुप्तं मर्यादा दशवार्षिकी ॥३१॥

श्लोकार्थ— बिम्ब के समान आकार वाले एवं अमृत के आश्रयस्वरूप प्रेयसी के मुखकमल का चुम्बन कीजिये। यहाँ पर क्रियापद छिपा हुआ है, उसे प्रकट करने के लिये समयसीमा वर्ष भर की निर्धारित है ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्य में प्रयुक्त ‘मर्यादा दशवार्षिकी’ का अर्थ सहजतया दश वर्ष की अवधि का निर्धारण करना प्रतीत होता है, लेकिन वाक्य के क्रियापद का पता नहीं चल पाता। उक्त ‘दशवार्षिकी’ को ‘दश + वार्षिकी’ इस प्रकार पदच्छेद कर पढ़ते हुये ‘मर्यादा’ पद को ‘वार्षिकी’ पद के साथ अन्वित कर लिया जाय तो ‘दश’ क्रियापद सिद्ध हो जाता है, जिसका अर्थ ‘चुम्बस्व’ अर्थात् ‘चुम्बन कीजिये’ होता ॥३१॥

राघव-स्य शरैघरेहरेहरावणमाहवे ।

अत्र क्रियापदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥३२॥

श्लोकार्थ— हे राघव ! दुःसह बाणों के द्वारा दुर्दमनीय रावण को युद्ध में मार डालिये। यहाँ पर क्रियापद गुप्त है, जो उसे जानता है, वही पण्डित है ॥

व्याकरण— प्रकृत श्लोक की प्रथम पंक्ति में पठित ‘राघवस्य’ षष्ठ्यन्त पद नहीं है; अपितु ‘राघव’ यह सम्बोधनवाचक है तथा सामान्यतया षष्ठी विभक्ति का बोध करने वाला ‘स्य’ पद क्रिया का वाचक है। ‘स्य’ शब्द की निष्पत्ति अन्तकर्मार्थक ‘ष’ धातु से लोट् लकार के मध्यम पुरुष, एकवचन में होती है, तिसका अर्थ ‘मार डालना’ होता है ॥३२॥

पामारोगाभिभूतस्य श्लेष्मव्याधिनिपीडित ।
यदि ते जीवितस्येच्छा तदा भोः शीतलं जलम् ॥३३॥

श्लोकार्थ— हे श्लेष्मव्याधि (सर्दी-खाँसी) से पीड़ित ! रोगग्रस्त होते हुये भी यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो शीतल जल मत पियो ॥

व्याकरण— प्रकृत श्लोक को पढ़ते ही ‘पामारोगाभिभूतस्य’ पद सामान्यतया ‘ते यदि जीवितस्येच्छा’ के साथ अन्वित प्रतीत होता है, जिससे कि ‘पामा’ अर्थात् विचर्चिका रोग से अभिभूत होते हुये भी यदि तुम जीना चाहते हो’ यह अर्थ स्फुटित होता है; लेकिन क्रियापद ज्ञात नहीं हो पाता । क्रियापद का ज्ञान प्राप्त करने के लिये ‘रोगाभिभूतस्य ते यदि जीवितस्येच्छा’ इस प्रकार पदच्छेद कर ‘पा + मा’ को अलग-अलग पद मानकर ‘मा पा’ के रूप में पढ़ते हुये उसे ‘शीतलं जलं’ के साथ अन्वित कर लिया जाय तो शीतल जल मत पियो’ यह अर्थ प्राप्त होने के साथ-साथ क्रियापद की प्राप्ति भी हो जाती है । पानार्थक ‘पा’ धातु से लुड़्लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन में ‘अपाः’ शब्द निष्पन्न होता है, जो प्रकृत में ‘माड़’ के साथ योग होने के फलस्वरूप ‘लुड़्लड़्लुड़्-क्षवडुदात्तः’ (पा० सू०-६.४.७१) विधीयमान ‘अट्’ आगम का निषेध होने से ‘पाः’ के रूप में प्रयुक्त दिखाई दे रहा है ॥३३॥

कान्तं विना नदीतीरम्मदमालोक्य केकिनी ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥३४॥

श्लोकार्थ— मेघज्योति को देखकर प्रिया से वियुक्त मयूरी प्रेमविह्वल होकर बार-बार कूज रही है । यहाँ पर क्रियापद गुप्त है, जो (उसे) जानता है, वही पण्डित है ॥

व्याकरण— प्रकृत श्लोक में पठित ‘नदीतीरम्मदमालोक्य’ को पढ़ते ही उसका अर्थ ‘नदी के किनारे’ है, यह प्रतीत होता है; लेकिन मुख्य क्रिया का ज्ञान नहीं हो पाता । पुनश्च ‘नदीति इरम्मद् आलोक्य’ इस प्रकार पदच्छेद करने पर ‘बार-बार शब्द करती है या कूजती है’ इस प्रकार का क्रियाबोधक यह अर्थ स्पष्ट हो जाता है; यतः ‘मेघज्योतिरिरम्मदः’ इस वचन के अनुसार ‘इरम्मद्’ शब्द ‘मेघज्योति’ का पर्यायवाची है, जिसे देखकर केकिनी नदीति अर्थात् कूजन कर रही है ॥३४॥

विराटनगरे रम्ये कीचकादुपकीचकम् ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥३५॥

श्लोकार्थ— रमणीय नगर में पक्षी एक बाँस से दूसरे बाँस के समीप उड़ा । यहाँ पर क्रियापद गुप्त है, जो उसे जानता है, वही पण्डित है ॥

व्याकरण— श्लोक में प्रथमतः पठित ‘विराटनगरे’ का सामान्यतः प्राप्त अर्थ ‘विराट नगर में’; लेकिन शेष पदों का उससे अन्वय करने पर क्रियापद स्पष्ट नहीं हो पाता । क्रियापद को स्पष्ट करने के लिये इसी ‘विराटनगरे’ पद को ‘विः आट नगरे’ इस प्रकार पदच्छेद करके देखा जाय तो ‘आट’ यह गुप्त क्रियापद स्पष्ट हो जाता है; साथ ही साथ श्लोक का निहितार्थ भी प्रकट हो जाता है । ‘वि’ = पक्षी, नगरे = नगर में, आट = उड़ा । स्पष्ट है कि ‘वि’ शब्द पक्षी का वाचक है एवं ‘आट’ क्रियापद है, जिसकी निष्पत्ति गत्यर्थक ‘अट्’ धातु के लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन में होती है ॥३५॥

क्रीडताशिशुना साकं स्तनपेन मृदैकदा ।
अयुतेनापि वर्षणां क्रिया चात्र सुदुर्लभा ॥३६॥

श्लोकार्थ— स्तन का पान करने वाले बच्चे ने एक दिन कुत्ते के साथ खेलते हुये मिट्टी खा लिया । यहाँ पर क्रियापद को खोज पाना हजार वर्षों में भी अत्यन्त दुर्लभ है ॥

व्याकरण— यहाँ पर ‘क्रीडताशिशुना साकं’ इस पद का सामान्य अर्थ ‘खेलते हुये बच्चे के साथ’ इटिति प्रकट हो जाता है; लेकिन क्रियापद कथमपि स्पष्ट नहीं हो पाता । इसी को जब ‘क्रीडता + आशि + शुना’ इस प्रकार पदच्छेद करके पढ़ा जायेगा तो श्लोक का निहितार्थ ‘कुत्ते के साथ खेलते हुये (मृत्तिका) खा ली (आशि)’ स्पष्ट होने के साथ-साथ क्रियापद भी प्रकट हो जाता है । भोजनार्थक ‘अश्’ धातु से (कर्मणि लुङ्) ‘आशि’ क्रियापद निष्पत्ति होता है ॥३६॥

अशुद्धिगुप्तम्

रामं, सीतां, लक्ष्मणं जीविकार्थे
विक्रीणीते यो नरस्तं च धिग् धिक् ।

अस्मिन् पदे योऽपशब्दान्न वेति
व्यर्थप्रज्ञं पण्डितं तं च धिग् धिक् ॥३७॥

श्लोकार्थ— जो व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिये राम, सीता एवं लक्ष्मण (की प्रतिमाओं या चित्रों) का विक्रिय करता है, उसे बार-बार धिक्कार है; साथ ही इस पद्म में आये अपशब्दों अर्थात् अशुद्धियों को जो नहीं जानता, उस बेकार बुद्धि वाले पण्डित को भी बार-बार धिक्कार है ॥

व्याकरण— प्रकृत पद्म में ‘रामं, सीतां, लक्ष्मणं’ यह तीनों ही पद अशुद्ध प्रयोग है; यतः ‘इवे प्रतिकृतौ’ (पा० सू०-५.३.३९), से होने वाले कन् प्रत्यय का लोप ‘जीविकार्थं चापण्ये’ (पा० सू०-५.३.९९) से पण्यभिन्न स्थल पर ही होता है । प्रकृत स्थल में पण्य का प्रसंग है; अतः उक्त लोपविधायक शास्त्र की प्रसक्ति न होने के कारण शुद्ध प्रयोग होगा— ‘रामकं सीतकां लक्ष्मणकम्’ ॥

कूटपद्यानि

अम्बरमम्बुनि पत्रमरातिः पीतमहीनगणस्य ददाह ।

यस्य वधूस्तनयं गृहमब्जा पातु स वो हरलोचनवह्निः ॥३८॥

अन्वयः— यस्य अम्बरं पीतं, (यस्य) गृहम् अम्बुनि, अहीनगणस्य अरातिः (यस्य) पत्रम्, (यस्य) वधूः अब्जा, (यस्य) तनयं हरलोचनवह्निः ददाह, स वः पातु ॥

श्लोकार्थ— जिसके वस्त्र पीत वर्ण के हैं, जिसका घर जल के अन्दर है, जिसका वाहन सर्पराजाओं का शत्रु गरुड़ है, जिसकी पत्नी कमल से उत्पन्न (लक्ष्मी) है एवं जिसके पुत्र (कामदेव) को महादेव के तृतीय नेत्र की अग्नि ने भस्म कर दिया था, वे विष्णु आप सबकी रक्षा करें ॥

यहाँ प्रयुक्त ‘पत्र’ शब्द ‘पत्रं वाहनपक्षयोः’— इस अमरकोशवचन के अनुसार ‘वाहन’ अर्थ का बोधक है ॥३८॥

गौरीक्षणं भूधरजाहिनाथः
पत्रं तृतीयं दयितोपवीतम् ।
यस्याम्बरं द्वादशलोचनाख्यः
काष्ठाः सुतः पातु सदाशिवो वः ॥३९॥

अन्वयः— यस्य गौः पत्रम्, (यस्य) तृतीयम् ईक्षणं, (यस्य) दयिता भूधरजा, (यस्य) उपवीतम् अहिनाथः, (यस्य) अम्बरं काष्ठाः, (यस्य) सुतः द्वादशलोचनाख्यः, सः सदाशिवः वः पातु ॥

श्लोकार्थ— जिसकी सवारी वृषभ है, जिसके पास तृतीय नेत्र है, जिसकी पत्नी पर्वतराज हिमालय की पुत्री (पार्वती) है, सर्पों का राजा जिसका उपवीत है, दिशायें ही जिसके वस्त्र हैं अर्थात् जो दिगम्बर है एवं बारह आँखों वाले (षण्मुख कार्तिकेय) जिसके पुत्र हैं, वे भगवान् सदाशिव आप सबकी रक्षा करें ॥३९॥

राजन् ! कमलपत्राक्ष ! तत्ते भवतु चाक्षयम् ।

आसादयति यद्वूपं करेणुः करणैर्विना ॥४०॥

अन्वयः— (हे) कमलपत्राक्ष राजन् ! करणैर्विना करेणुः यत् रूपम् आसादयति तत् ते च अक्षयं भवतु ॥

श्लोकार्थ— कमल के समान नेत्रों वाले हे राजन् ! क्, र् एवं ण् से रहित होने पर ‘करेणुः’ शब्द जिस ‘आये’ स्वरूप को धारण करता है, वह आपकी भी (आयु) अविनाशी हो अर्थात् आप चिरजीवी हों ॥

इस पद्य में ‘आयु’ शब्द को कहने के लिये कवि ने अपने समस्त बुद्धिचातुर्य का प्रयोग किया है, ऐसा प्रतीत होता है, जिसे कि समझ पाना अत्यन्त ही दुरुह है । जैसे कि ‘करेणुः’ शब्द से व्यञ्जन वर्ण— क्, र् तथा ण् को हटा देने पर कघटक ‘अ’, रेघटक ‘ए’ एवं णुःघटक ‘उः’ शेष रहता है । अब सामान्यतः अनर्थक प्रतीत हो रहे उपर्युक्त स्वरों का अर्थ ज्ञात करने के क्रम में प्रथमतः अ + ए की वृद्धिसन्धि करने पर ‘ऐ’ प्राप्त होता है; तत्पश्चात् ‘ऐ’ के अनन्तर ‘उः’ की उपस्थिति होने के कारण अयादि सन्धि करने पर ‘आयुः’ शब्द निष्पत्र होता है, जो कि कवि को अभीष्ट है ॥४०॥

विषं भुड्क्ष्व महाराज ! स्वजनैः परिवारितः ।

विना केन विना नाभ्यां कृष्णाजिनमकण्टकम् ॥४१॥

अन्वयः— महाराज ! स्वजनैः परिवारितः विना केन विषं विना नाभ्यां अकण्टकं कृष्णाजिनं भुड्क्ष्व ॥

श्लोकार्थ— प्रकृत पद्य के दो अर्थ हैं— सामान्य अर्थ एवं गूढ़ अर्थ । सामान्यतः प्रतीत होने वाला अर्थ इस प्रकार है—

हे राजन् ! परिवारसहित आप विष का भक्षण करें । किन्तु यह अर्थ सर्वथा असंगत है; यतः राजा को विषभक्षण के लिये कहना किसी के लिये भी सर्वथा असम्भव है । अतः दूसरा छिपा हुआ अर्थ ही मुख्य है, जो इस प्रकार है—

हे राजन् ! परिवारसहित आप क्, ष्, नकारद्वय अर्थात् ण् और न् से रहित निष्कण्टक कृष्णाजिनम् अर्थात् राज्य का भोग करें ॥

क्, ष्, ण्, न् वर्णों से रहित कृष्णाजिनम् = ऋ + आ + जि + अम् = राज्यम् ॥४१॥

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं, मद्देहे नित्यमव्ययीभावः ।

तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुत्रीहिः ॥४२॥

अन्वयः— (हे) पुरुष ! अहं द्वन्द्वः द्विगुः अपि मद्देहे च नित्यम् अव्ययीभावः, तत् कर्म धारय, येनाहं स्यां बहुत्रीहिः ॥

श्लोकार्थ— मैं पति-पत्नी दो प्राणी हूँ, एक गाय और एक बैल भी मेरे पास है, मेरे घर में व्यय का सदा-सर्वदा अभाव बना रहता है; अतएव हे पुरुष ! अथवा हे राजन् ! कुछ ऐसा कार्य करो, जिससे मैं बहुत धन-धान्य वाला हो जाऊँ ॥

इस पद्य को कवि ने किसी दरिद्र विद्वान् ब्राह्मण द्वारा किसी धनसम्पन्न व्यक्ति के समक्ष अपनी दीनता को समाप्त करने हेतु कही गई उक्ति के रूप में लिपिबद्ध किया है । वह दरिद्र विद्वान् ब्राह्मण धनसम्पन्न व्यक्ति से सहायता की प्रार्थना करते समय अपनी दीनता को चित्रित करने के साथ-साथ अपनी विद्वत्ता भी परिचय दे रहा है; क्योंकि याचना के क्रम में अपनी विकट स्थिति का वर्णन करने के लिये उसने जिन शब्दों का सहारा लिया है, वे ‘द्वन्द्व, द्विगु, अव्ययीभाव, तत्पुरुष, कर्मधारय और बहुत्रीहि’ शब्द समासों के नाम होने के साथ ही साथ दीनता-वर्णन के प्रसङ्ग में क्रमशः युगल (पति-पत्नी), दो गायों अथवा एक गाय और एक बैल (द्वे द्वौ वा गावौ यस्य सः द्विगुः), व्यय का अभाव, हे पुरुष ! वह कर्म करो एवं बहुत धान्य वाला— इन अर्थों के भी बोध कराने वाले हैं ॥४२॥

वासुदेवो निराकारः पूजनीयोऽस्ति किं क्वचित् ।

वसुदेवो हि साकारः पूजनीयः सदा जनैः ॥४३॥

अन्वयः— निराकारः वासुदेवः अपि क्वचित् पूजनीयः अस्ति किम् ? हि जनैः सदा साकारः वसुदेवः पूजनीयः ॥

श्लोकार्थ— प्रकृत पद्य के दो अर्थ हैं— सामान्य अर्थ एवं गूढ़ अर्थ । सामान्यतः प्रतीत होने वाला अर्थ इस प्रकार है—

निराकार वासुदेव की भी भला कहीं पूजा होती है क्या ? लोगों द्वारा हर समय साकार वासुदेव की पूजा करनी चाहिये । लेकिन यह इस पद्य का वास्तविक अर्थ नहीं है; वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

निराकार (निर् + आकार) अर्थात् आकार ('आ' स्वर) से रहित वासुदेव (वसुदेव) की भी भला कहीं पूजा की जाती है ? पूजा तो लोग सदा साकार (स + अकार) अर्थात् अकार ('अ' स्वर) के सहित वसुदेव (वासुदेव) भी भला कहीं पूजित होते हैं ? पूजा तो लोग सदा अकारसहित वसुदेव (= वासुदेव) की करते हैं ।

निराकारः और **साकारः** पद यहाँ विग्रहरहित और विग्रहवान् के द्योतक नहीं हैं; अपितु 'आ' स्वररहित और 'अ' स्वरसहित के बोधक हैं ॥४३॥

कुन्दकुञ्जममुं पश्य सरसीरुहलोचने ! ।
अमुना कुन्दकुञ्जेन सखि ! मे किं प्रयोजनम् ॥४४॥

अन्वयः— सरसीरुहलोचने ! अमुं कुन्दकुञ्जं पश्य । सखि ! अमुना कुन्दकुञ्जेन मे किं प्रयोजनम् ॥

श्लोकार्थ— हे कमलनयनि ! उस कुन्दकुञ्ज को देखो । हे सखि ! मुझे उस 'मु'विहीन कुन्दकुञ्ज से क्या मतलब है ? मुझे तो 'मु'सहित कुन्दकुञ्ज अर्थात् मुकुन्दकुञ्ज से प्रयोजन है ।

प्रकृत पद्य में प्रथमतः पठित 'अमुं' पद सर्वनाम 'अदस्' शब्द के द्वितीय एकवचन का रूप है, जिसका तात्पर्य नायिका ने 'मु'रहित ग्रहण किया है; जबकि दूसरी बार पठित 'अमुना' शब्द सर्वनामवाचक न होकर 'मु'सहित का वाचक है, जिसका अन्वय 'कुन्दकुञ्ज' करके 'मुकुन्दकुञ्ज' अर्थ ग्रहण किया गया है ॥

पानीयं पातुमिच्छामि त्वत्तः कमललोचने ! ।

यदि दास्यसि न पास्यामि नो दास्यसि पिबाम्यहम् ॥४५॥

अन्वयः— (हे) कमललोचने ! अहं त्वत्तः पानीयं पातुम् इच्छामि ।
यदि दास्यसि (तदा) न पास्यामि, (यदि) नो दास्यसि (तदा) पिबामि ॥

श्लोकार्थ— हे कमल-सदृश नयनों वाली ! मैं तुम्हारे द्वारा जल पीना चाहता हूँ । यदि तुम दोगी तो नहीं पीऊँगा और नहीं दोगी तो पी लूँगा ॥

यहाँ दोगी तो नहीं पीऊँगा एवं नहीं दोगी तो पी लूँगा— यह कथन अटपटा प्रतीत होता है । इसका समाधान करने हेतु यहाँ ‘दास्यसि’ पद का ‘दासी + असि’ इस प्रकार पदच्छेद करना चाहिये । ऐसा पदच्छेद करने पर अर्थ इस प्रकार होगा— यदि तुम दासी हो तो मैं तुम्हारे द्वारा दिये गये जल को नहीं पीऊँगा और यदि दासी नहीं हो तो पी लूँगा ॥४५॥

एकोना विंशतिः स्त्रीणां स्नानार्थं सरयूं गता ।

विंशतिः पुनरायाता चैको व्याघ्रेण भक्षितः ॥४६॥

अन्वयः— एको ना विंशतिः स्त्रीणां स्नानार्थं सरयूं गताः, एको व्याघ्रेण भक्षितः विंशतिः पुनः आयाताः ॥

श्लोकार्थ— एक पुरुष और बीस स्त्रियाँ स्नान करने के लिये सरयू नदी गईं । एक को तो व्याघ्र ने खा लिया और शेष बीस वापस लौट आईं ।

यहाँ प्रयुक्त ‘एकोना विंशतिः’ शब्द का अर्थ सामान्यतः एक कम बीस अर्थात् उन्नीस प्रतीत होता है; लेकिन इस अर्थ को अंगीकार करने पर सरयू-स्नान हेतु उन्नीस स्त्रियों का जाना, उनमें से एक को व्याघ्र द्वारा खा जाना और फिर भी बीस का वापस आना अविश्वसनीय प्रतीत होता है । अतः वास्तविक अर्थ का ज्ञान प्राप्त करने के लिये ‘ना’ शब्द को पुरुषवाचक ‘नृ’ शब्द के प्रथमा एकवचन का रूप मान कर ‘एको ना’ इस प्रकार पदच्छेद करना चाहिये ॥

देवराजो मया दृष्टे वारिवारणमस्तके ।

भक्षयित्वार्कपर्णानि विषं पीत्वा क्षयं गतः ॥४७॥

अन्वयः— देवराज (देवर ! अजः) वारिवारणमस्तके मया दृष्टः, अकृपर्णानि भक्षयित्वा विषं पीत्वा क्षयं गतः ॥

श्लोकार्थ— प्रकृत श्लोक के दो अर्थ हैं— एक भ्रामक अर्थ और दूसरा वास्तविक अर्थ। भ्रामक अर्थ वह है, जो श्लोक को देखते के साथ ही झटिति प्रतीत होता है और वह यह है कि ‘देवराज इन्द्र को पुल पर देखा, जो अर्क अर्थात् धत्तूर के पत्ते को खाकर जल पीकर क्षय अर्थात् नष्ट हो गया।’ लेकिन यह श्लोक का वास्तविक अर्थ नहीं है।

वास्तविक अर्थ यह है कि ‘हे देवर ! पुल पर मैंने बकरे को देखा, जो अर्क के पत्ते का भक्षण कर विष अर्थात् जल पीकर क्षय अर्थात् वासस्थान को चला गया।’ सामान्य। आपाततः प्रतीयमान अर्थ— मैंने पुल पर देवराज इन्द्र को देखा। अर्क के पत्ते खाकर और विष पीकर (विषं पीत्वा) वह नष्ट हो गया (क्षयं गतः) ।

यहाँ प्रयुक्त ‘विष’ शब्द ‘गरले विषमभसि च’ इस अमर-कोशवचन ने अनुसार ‘विष’ जल का एवं ‘हेम’ शब्द ‘क्षयो गेहे च कल्पान्ते’ इस हेमचन्द्र-कोशवचन के अनुसार गृह का वाचक है ॥४७॥

समरे हेमरेखाङ्कं बाणं मुञ्चति राघवे ।
स रावणोऽपि मुमुचे मध्ये रीतिधरं शरम् ॥४८॥

अन्वयः— समरे राघवे मध्ये रीतिधरं शरं हेमरेखाङ्कितं बाणं मुञ्चति (सति) स रावणः अति मुमुचे ॥

श्लोकार्थ— यहाँ भी श्लोक का भ्रामक अर्थ ही पहले सामने आता है और वह यह है कि ‘युद्धभूमि में राम द्वारा ऐसा बाण, जिसके मध्यभाग में रीति अर्थात् पीतल लगा हुआ था, छोड़ते ही वह रावण भी मुक्त हो गया।’ लेकिन यह वास्तविक अर्थ नहीं है। वास्तविक अर्थ निम्नवत् है—

युद्ध के प्राञ्जण में राम द्वारा सुवर्णरिखाओं से चिह्नित बाण के छोड़ते ही उस रावण ने ‘मध्ये रीतिधरं शरं’ बीच में ‘री’ अक्षर को धारण करने वो शर अर्थात् शरीर से मुक्त हो गया ॥४८॥

अयि सखि शस्तः सखिवत्यतिरिति किं त्वं न जानासि ? ।

शस्तोऽतिसखिवदुपपतिरित्यालि कथं त्वयापि नाबोधि ? ॥४९॥

अन्वयः— अयि सखि ! सखिवत् पतिः शस्तः इति त्वं न जानासि किम् ? आलि ! अतिसखिवत् उपपतिः शस्तः इति त्वया अपि न अबोधि किम् ?

श्लोकार्थ— प्रकृत श्लोक भी स्वयं में दो अर्थों को समाहित किये हुये हैं। पहला सामान्य अर्थ है और वह यह है कि ‘हे सखि ! शास्त्रों में जिस प्रकार मित्र को प्रशंसित किया गया है, उसी प्रकार पति को भी प्रशंसित किया गया है, क्या यह तुम्हें पता नहीं है ? किसी सखी द्वारा इस प्रकार प्रश्न किये जाने पर दूसरी सखी कहती है कि हे सखि ! शास्त्रों में जिस प्रकार अतिप्रिय मित्र को प्रशंसित किया गया है, उसी प्रकार उपपति अर्थात् जारपुरुष को भी प्रशंसित किया गया है, क्या यह तुमने नहीं जाना ? लेकिन यह श्लोक का वास्तविक अर्थ नहीं है। वास्तविक अर्थ निम्नवत् है—

‘हे सखि ! क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं है कि शास् प्रत्यय (द्वितीया बहुवचन) में ‘पति’ शब्द के रूप भी सखि शब्द के समान ही चलते हैं ?’ एक सखी के इस प्रकार प्रश्न करने पर दूसरी सखी उत्तर न देकर पूछ बैठती है कि ‘हे सखि ! क्या तुम्हें यह नहीं पता है कि शास् प्रत्यय (द्वितीया बहुवचन) में उपपति शब्द के रूप भी अतिसखि शब्द के समान ही चलते हैं ॥४९॥

मञ्जुलघौ सम्भावितगुणे क्वचिन्नापदाधारे ।
अयि सखि ! तत्रोपपतौ मम चेतो न त्वनीदृशे पत्यौ ॥५०॥

अन्वयः— अयि सखि ! मम चेतो तत्रोपपतौ मञ्जुलघौ सम्भावितगुणे क्वचिन्नापदाधारे न त्वनीदृशे पत्यौ ।

श्लोकार्थ— प्रकृत पद्य भी अपने-आप में दो अर्थों को समाहित किये हुये हैं। पहला सामान्य अर्थ यह है कि— हे सखि ! मेरा मन तो उस उपपति में जो मञ्जुल अर्थात् सुन्दर (मनोज्ञं मञ्जु मञ्जुलम्— अमरकोश) है, मेरा लघु अर्थात् अभीष्ट (त्रिष्विष्टल्पे लघु—अमरकोश) है, जिसके गुणों का समादर किया जाता है एवं जो कभी भी विपत्ति से ग्रस्त नहीं होता, लगा हुआ है; न कि इन उपर्युक्त गुणों से हीन पति में ।

वास्तविक अर्थ इस प्रकार है— ‘हे सखि ! मेरे मन में ‘उपपति’ शब्द है, जिसमें ‘पतिः समास एव’ (पा० सू०-१.४.८) से विधीयमान मनोहर घिसंज्ञा होती है, जिसमें ‘घेर्डिति’ (पा० सू०-७.३.१११) से गुण एकादेश का सम्पादन होता है एवं तृतीया एकवचन में जो कभी-कभी ‘आडो नाऽस्त्रियाम्’ (७.३.१२०) से विधीयमान ‘ना’ पद का विषय बनता है; न कि ‘पति’ शब्द

में, जिसमें कि उपर्युक्त घिसंज्ञा-गुण-ना आदेश इत्यादि कुछ भी नहीं होता ॥५०॥

पतिरतीव धनी सुभगो युवा परविलासवतीषु पराङ्मुखः ।

शिशुरलङ्कुरुते भनं सदा तदपि सा सुदती रुदती कुतः ? ॥५१॥

अन्वयः— (तस्याः) पतिः अतीव धनी सुभगः युवा परविलासवतीषु पराङ्मुखः शिशुः भवनम् अलङ्कुरुतु तदपि सा सुदती कुतः रुदती ?

श्लोकार्थ— (उस सुन्दरी का) पति अत्यन्त धनसम्पन्न एवं युवक है, (फिर भी) दूसरी रमणियों की ओर से विमुख रहता है, पुत्र उसके घर को सुशोभित करता है; फिर भी सुशोभन दाँतों वाली वह (पता नहीं) क्यों हर समय रोती रहती है ?

प्रकृत पद्य का अर्थ यद्यपि सुस्पष्ट है, लेकिन समस्त सांसारिक सुखों की प्राप्ति के बाद भी वह रमणी क्यों रोती रहती है; इसका उत्तर ध्यान से देखने पर श्लोक के प्रथम पादस्थ ‘सुभग’ पद पर सूक्ष्मतया दृष्टिपात प्राप्त हो जाता है। ‘सुभग’ शब्द यहाँ ‘सुन्दर’ इस सामान्य अर्थ का बोधक न होकर ‘सु (शोभनेषु) भेषु (नक्षत्रेषु) गच्छति (गमनं करोति) इति सुभगः’ इस अर्थ का बोधक है। आशय यह है कि ऐश्वर्य से सम्पन्न एवं युवा होते हुये भी उस सुन्दरी का वह पति रमण के ज्यौतिषशास्त्रविहित नक्षत्रों में ही उसके साथ रमण करता है, रमणी की इच्छानुसार नहीं करता; जिस कारण उस रमणी की कामपिपासा का शमन नहीं हो पाता। इसीलिये वह सदा-सर्वदा रोती रहती है ॥५१॥

पाने च देहे प्रमुखं कमाहुः

कः शीघ्रगामी नभसो मणिः कः ? ।

कः सृष्टिकर्ता रतिवल्लभः कः

प्रश्नेषु गुप्तानि तदुत्तराणि ॥५२॥

अन्वयः— पाने देहे च कं प्रमुखम् आहुः ? शीघ्रगामी कः ? नभसः मणिः कः ? सृष्टिकर्ता कः ? रतिवल्लभः कः ? (एषु सर्वेषु) प्रश्नेषु तदुत्तराणि गुप्तानि (सन्ति) ।

श्लोकार्थ— पान अर्थात् पेय पदार्थों में एवं शरीर में किसे मुख्य कहा गया है अर्थात् कीसकी प्रधानता बताई गई है ? शीघ्रतापूर्वक गमन करने वाला

कौन होता है ? आकाश का मणि कौन है ? सृष्टि का रचयिता कौन है ? रति का पति कौन है ? इन प्रश्नों के उत्तर इन प्रश्नों में ही छिपे हुये हैं ।

प्रकृत पद्म में कहे गये सभी वाक्य प्रश्नात्मक होते हुये भी उन प्रश्नों के उत्तरों को भी अपने-आप में ही समाहित किये हुये हैं, उन प्रश्नों का उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

१. पान में प्रमुख कौन (कं) है ? उत्तर— कम् (जल) ।
२. शरीर में प्रमुख कौन (कं) है ? उत्तर— कम् (शिर) ।
३. शीघ्रगामी कौन (कः) है ? उत्तर— कः (वायु) ।
४. आकाश का मणि कौन (कः) है ? उत्तर— कः (सूर्य) ।
५. सृष्टिकर्ता कौन (कः) है ? उत्तर— कः (ब्रह्मा) ।
६. रति का पति कौन (कः) है ? उत्तर— कः (कामदेव) ।

वाक्यों में प्रयुक्त प्रश्नवाचक ‘कं’ एवं ‘कः’ पद ‘मारुते वेधसि ब्रज्ञे पुंसि कः कं शिरोऽम्बुनोः’— इस अमरकोवचन के अनुसार उपर्युक्त समस्त उत्तरात्मक अर्थों का भी बोधक होता है ॥५२॥

के भूषयन्ति स्तनमण्डलानि
कीदृश्युमा चन्द्रमसः कुतः श्रीः ? ।
किमाह सीता दशकण्ठनीता
हारामहादेवरतात मातः ॥५३॥

अन्वयः— स्तनमण्डलानि के भूषयन्ति ? उमा कीदृशी ? चन्द्रमसः श्रीः कुतः ? दशकण्ठनीता सीता किमाह ? ‘हारामहादेवरतात मातः’ ।

श्लोकार्थ— स्तनमण्डलों को कौन सुशोभित करते हैं ? उमा अर्थात् पार्वती किस प्रकार की हैं ? चन्द्रमा की कान्ति किससे है ? रावण द्वारा (हरण कर) ले जाई जाती हुई सीता ने क्या कहा ? इन चारो प्रश्नों के उत्तर का बोधक श्लोक का चतुर्थ चरण है । चतुर्थचरणस्थ पद ‘हारामहादेवरतात मातः’ का सूक्ष्मतया अनुशीलन करने पर पृष्ठ सभी प्रश्नों के उत्तर निम्नवत् प्राप्त होते हैं—

प्रथम प्रश्न = ‘हाराः अर्थात् हार ।

द्वितीय प्रश्न = महादेवरता अर्थात् भगवान् शङ्कर में अनुरक्त ।

तृतीय प्रश्न = ‘तमातः’ अर्थात् रात्रि से ।

चतुर्थ प्रश्न = हारामहादेवरतात मातः । अर्थात् हा राम ! हा देवर ! हा तात ! हा मातः ! ॥५३॥

भिन्दन्ति के कुञ्जरकर्णपालिं किमव्ययं वक्ति रते नवोढा ?

सम्बोधनं नुः किमिहौषधिः किं स्याद्रक्तपित्तस्य पदं प्रदेहि ॥५४॥

अन्वयः— कुञ्जरकर्णपालिं के भिन्दन्ति ? रते नवोढा किमव्ययं वक्ति ? नुः सम्बोधनं किम् ? रक्तपित्तस्य औषधिः किं स्यात् ? इह पदं प्रदेहि ।

श्लोकार्थ— हाथियों के कर्णपाली का भेदन कौन करता है ? नववधु रतिकाल में नवविवाहिता किस अव्ययपद का उच्चारण करती है ? 'नु' शब्द का सम्बोधनवचक पद क्या है ? रक्तपित्त की औषधि क्या है ? इन सभी प्रश्नों के उत्तरस्वरूप किसी एक पद का प्रयोग कीजिये ।

प्रकृत श्लोक में केवल प्रश्नों का कथन किया गया है, उत्तर अनुकृत है, जो कि पाठक को स्वयं देना है । इन सभी प्रश्नों के उत्तरस्वरूप 'सिंहाननः' पद का प्रयोग युक्तियुक्त है । यथा—

प्रथम प्रश्न = 'सिंहः' अर्थात् शेर ।

द्वितीय प्रश्न = 'न-न' अर्थात् नहीं-नहीं ।

तृतीय प्रश्न = 'नः' अर्थात् हे नर ।

चतुर्थ प्रश्न = 'सिंहाननः' अर्थात् सिंहास्य (अडूसा) ॥५४॥

को निर्दग्धस्त्रिपुररिपुणा कञ्च कर्णस्य हन्ता ?

नद्याः कूलं विघटयति कः कः परस्त्रीरतश्च ? ।

कः सन्नद्धो भवति समरे भूषणं किं कुचानाम् ?

दुस्सङ्गात्किं भवति महतां मानपूजापहारः ॥५५॥'

अन्वयः— त्रिपुररिपुणा कः निर्दग्धः ? कर्णस्य हन्ता कः ? नद्याः कूलं कः विघटयति ? परस्त्रीरतः कः ? समरे सन्नद्धः कः भवति ? कुचानां किं भूषणम् ? दुस्सङ्गात् महतां किं भवति ? 'मानपूजापहारः' ।

श्लोकार्थ— त्रिपुरारि (शङ्कर) के द्वारा कौन भस्मीभूत किया गया था ? कर्ण को मारने वाला कौन है ? नदी के कूलों (किनारों) को कौन विघटित करता है ? दूसरों की स्त्री में कौन रमण करता है ? युद्ध में लड़ने के लिये कौन

तैयार होता है ? स्तनों का आभूषण क्या है ? दुर्जनों के संसर्ग से महान् लोगों का क्या होता है ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर है— मानपूजापहारः ।

उपर्युक्त पद्म में कुल सात प्रश्न किये गये हैं और पद्म के अन्त में सात अक्षरों वाले समस्त पद ‘मानपूजापहारः’ में ही सभी प्रश्नों का उत्तर अनुस्यूत कर दिया गया है । इस समस्त पद में छिपे उत्तर को खोजने की प्रक्रिया यह है कि प्रारम्भिक प्रश्न से लेकर छठे प्रश्न तक का उत्तर जानने के लिये ‘मानपूजापहारः’ पद के प्रथम अक्षर से आरम्भ कर छठे अक्षर तक को क्रमशः पद के अन्तिम अक्षर के साथ संयुक्त करने पर निष्पन्न शब्द से मिल जाता है । अन्तिम सातवें प्रश्न का उत्तरस्वरूप सम्पूर्ण समस्त पद ही गृहीत किया जाता है; यथा—

प्रथम प्रश्न = ‘मानपूजापहारः’ का ‘मा’ + ‘रः’ अर्थात् ‘कामदेव’ ।

द्वितीय प्रश्न = ‘मानपूजापहारः’ का ‘न’ + ‘रः’ अर्थात् ‘अर्जुन’ ।

तृतीय प्रश्न = ‘मानपूजापहारः’ का ‘पू’ + ‘रः’ अर्थात् ‘जल का बहाव’ ।

चतुर्थ प्रश्न = ‘मानपूजापहारः’ का ‘जा’ + ‘रः’ अर्थात् ‘उपपति’ ।

पञ्चम प्रश्न = ‘मानपूजापहारः’ का ‘प’ + ‘रः’ अर्थात् ‘शत्रु’ ।

षष्ठ प्रश्न = ‘मानपूजापहारः’ का ‘हा’ + ‘रः’ अर्थात् ‘हार’ ।

सप्तम प्रश्न = ‘मानपूजापहारः’ अर्थात् सम्मान एवं सत्कार का हरण ।

इस प्रकार एक ही समस्त पद द्वारा उपर्युक्त सातों प्रश्नों का उत्तर पाठक को प्राप्त हो जाता है ॥५५॥

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति परिपन्थं च तिष्ठति ।

ब्रातेन जीवत्यधुना न वशः पूर्ववत्सनः ॥५६॥

अन्वयः— सः अधुना पूर्ववत् पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति, परिपन्थं तिष्ठति ब्रातेन च जीवति, नः वशः न ।

श्लोकार्थ— वह अब भी पहले की तरह ही पक्षियों, मछलियों एवं पशुओं का वध करता है, चारों ओर रास्ते पर रहता है अर्थात् चोर-लुटेरों का कार्य करता है और मजदूरी का कार्य कर जीवित है; (उस पर) हमारा वश नहीं है अर्थात् हम लोगों का कहा वह कभी नहीं सुनता ।

प्रकृत श्लोक में पाणिनिप्रणीत अष्टाध्यायी के छः सूत्रों ‘पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति’ (४.४.३५), ‘परिपन्थं च तिष्ठति’ (४.४.३६) ‘ब्रातेन जीवति’

(४.२.२१), 'अधुना' (५.३.१७), 'न वशः' (६.१.२०) एवं 'पूर्ववत्सनः' (१.३.६२) का सङ्कलन करके उन सूत्रों के अर्थ को इस प्रकार समायोजित किया गया है कि सभी को मिला देने पर एक वाक्य बन जाता है ॥५६॥

मधौ मन्दं मन्दं मरुति शिशिरे वाति रुचिरे
कुलस्त्रीभिः कृष्णे विहरति तथा वृष्णिनिकरे ।
उषा योषा तोषाद्वदनमनिरुद्धस्य मिषतः
पुरः पत्युः कामाच्छ्वशुरमियमालिङ्गति सती ॥५७॥

अन्वयः— मन्दं मन्दं शिशिरे रुचिरे मरुति वाति मधौ कृष्णे तथा वृष्णिनिकरे कुलस्त्रीभिः विहरति (सति) मिषतः तोषात् पुरः पत्युः अनिरुद्धस्य वदनं इयं सती उषा कामात् श्वशुरम् आलिङ्गति ।

इलोकार्थ— धीरे-धीरे बहते हुये शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन वाले चैत्र मास में श्रीकृष्ण एवं यादवों द्वारा गोपबालाओं के साथ विहार किये जाने पर देश-काल की परिस्थितियों से प्रभावित होकर सती उषा पति अनिरुद्ध को अपने सामने पाकर काम से अभिभूत हो जाती है । (असंगत अर्थ—) अपने श्वशुर काम का आलिङ्गन करने लगती है ।

प्रकृत पद्य द्वारा यह कहना कि 'उषा ने अपने श्वशुर का आलिङ्गन किया' उसकी कामविह्वलता को प्रकट करना-मात्र है । इसमें अन्य कोई रहस्यात्मक अर्थ छिपा हुआ नहीं है । 'श्वशुरं आलिङ्गति' इस प्रकार यहाँ अन्वय नहीं है; अपितु 'श्वशुरं पुरः अनिरुद्धस्य वदनं आलिङ्गति' इस प्रकार से अन्वय है । कवि का अभिप्राय यह है कि सामयिक वातावरण के प्रभाववश उषा इतनी अधिक कामातुर हो गई कि उसने यह भी ध्यान नहीं दिया कि उसके श्वशुर वहीं उपस्थित हैं; अतः अपने काम पर नियन्त्रण रखें; बल्कि लोक-लज्जा का परित्याग कर उसने सबके सामने ही अपने पति को आलिङ्गनपाश में आबद्ध कर लिया ॥५७॥

इस प्रकार श्रीनिवासशर्मकृत 'व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्' की 'ज्योत्स्ना' हिन्दी व्याख्या पूर्णता को प्राप्त हुई ।

अतिलघूत्तरीय प्रश्नोत्तर

१. प्रश्न— ‘गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्’ के प्रणेता कौन हैं ?

उत्तर— पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ।

२. प्रश्न— पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के पिता कौन थे ?

उत्तर— पण्डित दुर्गादत्त गौड़ ।

३. प्रश्न— पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का जन्म कब हुआ ?

उत्तर— चैत्र शुक्ल अष्टमी विक्रम संवत् १९१५ में ।

४. प्रश्न— अम्बिकादत्त का जन्म कहाँ हुआ था ?

उत्तर— जयपुर के सिलवटों के मुहल्ले (ननिहाल) में हुआ था ।

५. प्रश्न— अम्बिकादत्त के माता का देहावसान कब हुआ ?

उत्तर— वि० सं० १९३१ में ।

६. प्रश्न— इनकी शिक्षा कब और कहाँ प्रारम्भ हुई ?

उत्तर— वि० सं० १९२० में काशी में ।

७. प्रश्न— अम्बिकादत्त व्यास की प्रथम रचना कब रची गई और कौन थी ।

उत्तर— प्रथम रचना—‘प्रस्तारदीपक’, वि० सं० १९२५ में ।

८. प्रश्न— पण्डित अम्बिकादत्त को ‘व्यास’ की उपाधि किसने दी ?

उत्तर— पण्डितसभा में स्वामी विशुद्धानन्द ने ।

९. प्रश्न— इनके पिता का देहावसान कब हुआ ?

उत्तर— वि० सं० १९३७ में ।

१०. प्रश्न— पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने किन-किन भाषाओं का अध्ययन किया ?

उत्तर— हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला ।

११. प्रश्न- 'घटिकाशत' की उपाधि कब और कहाँ से प्राप्त की ?

उत्तर- काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा से वि० सं० १९३८ में 'घटिकाशत' की उपाधि प्राप्त की ।

१२. प्रश्न- 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्' की रचना कब की ?

उत्तर- १९३७ वि० सं० में ।

१३. प्रश्न- पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने साहित्याचार्य की उपाधि कब और कहाँ से प्राप्त की ?

उत्तर- गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस से वि० सं० १९३७ में साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त की ।

१४. प्रश्न- मधुवनी संस्कृत स्कूल के अध्यक्ष कब बने ?

उत्तर- वि० सं० १९४० में ।

१५. प्रश्न- अम्बिकादत्त व्यास ने कुल कितने पुस्तकों की रचना की ?

उत्तर- वि० सं० १९२५ से वि० सं० १९५४ तक ७८ ग्रन्थों की रचना की ।

१६. प्रश्न- पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का प्रसिद्ध ग्रन्थ कौन-सा है ?

उत्तर- 'शिवराजविजयम्' ।

१७. प्रश्न- 'शतावधान' की उपाधि किस राजा ने दिया ?

उत्तर- अयोध्यानरेश ने ।

१८. प्रश्न- 'भारतभूषण' की उपाधि स्वर्णपदकसहित कब, कहाँ और किससे प्राप्त हुयी ?

उत्तर- बम्बई की महासभा में वल्लभकुलावतंस गोस्वामी घनश्यामलाल से स्वर्णपदकसहित 'भारतभूषण' की उपाधि वि० सं० १९५५ में प्राप्त हुई ।

१९. प्रश्न- पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का देहावसान कब हुआ ?

उत्तर- मार्गशीर्ष कृष्ण त्रयोदशी, सोमवार वि० सं० १९५७ में हुआ था ।

२०. प्रश्न- पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की सुप्रसिद्ध रचना 'शिवराजविजयम्' कब प्रारम्भ हुई तथा कब पूर्ण हुई ?

उत्तर- वि० सं० १९४५ से प्रारम्भ होकर वि० सं० १९५० में शिव-
राजविजय की रचना पूर्ण हुई ।

२१.प्रश्न- 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्' का दूसरा नाम क्या है ?

उत्तर- 'पण्डितपछार' ।

२२.प्रश्न- 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्' की रचना किस उद्देश्य से की गई है ?

उत्तर- प्रत्येक पद्य या वाक्य में साधारणतया पकड़ में न आने वाली
कुछ अशुद्धियों का सन्निवेश होने के कारण यह पुस्तक व्याकरण-
शास्त्र के अभ्यास और उसकी मार्मिक त्रुटियों के ज्ञान का साधन है ।

२३.प्रश्न- स्वर्णपदकसहित 'बिहारभूषण' की उपाधि कब और किससे
प्राप्त हुई ?

उत्तर- वि० सं० १९४५ में सनातन धर्म महामण्डल दिल्ली से ।

२४.प्रश्न- अम्बिकादत्त व्यास ने कौन-सी संस्था की स्थापना की ?

उत्तर- सुनोति सञ्चारिणी सभा तथा बिहार-संस्कृत-सञ्जीवनी की ।

२५.प्रश्न- अम्बिकादत्त व्यास ने किस पत्रिका का सम्पादन किया था ?

उत्तर- 'पीयूषप्रवाह' पत्रिका का ।

२६.प्रश्न- अम्बिकादत्त व्यास धार्मिक आन्दोलनों में कब सक्रिय हुए ?

उत्तर- वि० सं० १९४० में ।

२७.प्रश्न- मधुवनी जिला स्कूल के अध्यक्ष से पद से त्यागपत्र देकर
कहाँ के अध्यक्ष बने ?

उत्तर- मुजफ्फरपुर जिला स्कूल के ।

२८.प्रश्न- भागलपुर जिला स्कूल के अध्यक्ष पद पर कब आसूढ़ हुए ?

उत्तर- वि० सं० १९४४ में ।

२९.प्रश्न- पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने मिथिलानरेश से कब सम्मान
पाया ?

उत्तर- वि० सं० १९४५ में ।

३०.प्रश्न- वि० सं० १९४६ से १९४७ तक कितने पुस्तकों की रचना
व्यास जी द्वारा की गई ?

उत्तर- छः पुस्तकों की ।

३१.प्रश्न- 'गद्यमीमांसा' की रचना किसने की है ?

उत्तर- पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने ।

३२.प्रश्न- अवतारमीमांसा का रचयिता कौन है ?

उत्तर- 'भारतभूषण' पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ।

३३.प्रश्न- पण्डित अम्बिकादत्त ने भारतरत्न कब और किससे प्राप्त की ?

उत्तर- वि० सं० १९५१ में कांकरोली के वल्लभ कुलावतंस गोस्वामी श्री बालकृष्णलाल जी महाराज से स्वर्णपदक सहित 'भारतरत्न' उपाधि प्राप्त की ।

३४.प्रश्न- पण्डित अम्बिकादत्त व्यास कब महाकवि से सम्मानित हुये ?

उत्तर- वि० सं० १९५४ में ७८ उत्कृष्ट ग्रन्थों के रचयिता होने के कारण ।

३५.प्रश्न- 'गुप्ताशुद्धि' की व्याख्या (व्युत्पत्ति) कीजिए ?

उत्तर- क्रिया, कर्म गुप्त हों, पर ऐसे लेख नहीं देखने में आते, जिनमें कुछ अशुद्धि हो और वह गुप्त हो ।

३६.प्रश्न- पण्डित अम्बिकादत्त व्यास द्वारा विरचित 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्' में अशुद्धिघटित पद्यों की संख्या कितनी है ?

उत्तर- दस ।

३७.प्रश्न- वर्तमान 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्' में कितने पद्य हैं ?

उत्तर- बीस ।

३८.प्रश्न- 'नोऽत्रास्ति' का शुद्ध रूप क्या है और क्यों ?

उत्तर- 'नो' चादिगण में पठित होने के कारण निपातसंज्ञक है, अतः 'ओत्' सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा होकर 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' सूत्र से प्रकृतिभाव होकर पूर्वरूप के अभाव में 'नो अत्रास्ति' यह शुद्ध रूप होगा ।

३९.प्रश्न- 'इयं सह प्रणतिना कृता' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- यह अञ्जलि का विशेषण है तथा यह शब्द पुलिङ्ग है, अतः 'या

विशेष्येषु दृश्यन्ते लिङ्गसंख्याविभक्तयः । प्रायस्ता एव कर्तव्याः समानार्थे विशेषणे' इस नियम के अनुसार 'इयम्' के स्थान पर अयम् और कृताः के स्थान पर कृतः होना चाहिए । 'प्रणति' शब्द 'स्त्रियां कितन्' से क्तिन्नत्त होने के कारण स्त्रीलिङ्गं है, तृतीया एकवचन में उसका रूप 'प्रणत्या' होगा और शुद्ध प्रयोग 'अयं सह प्रणत्या कृतः' होगा ।

४०. प्रश्न- 'लक्ष्मी ते' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- लक्ष्मी शब्द अङ्गन्त है, अतः 'सु' का लोप नहीं होगा । अतः शुद्ध रूप 'लक्ष्मीस्ते' होगा ।

४१. प्रश्न- 'तव, मम' 'ते' और 'मे' के रूप में किन परिस्थितियों में परिवर्तित नहीं होते हैं ?

उत्तर- 'तव, मम' को 'ते' और 'मे' आदेश 'च' के योग में नहीं होते ।

४२. प्रश्न- 'सम्बन्धो' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'सम्बन्धः' के विसर्ग का उत्त्व होकर 'सम्बन्धो' रूप बनता है, किन्तु इसके बाद 'पिता' शब्द है, जिसका पकार हश् प्रत्याहार में नहीं आता, अतः 'हशि च' सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी इसलिए उत्त्वाभाव में विसर्गान्त शब्द 'सम्बन्धः' ही शुद्ध रूप होगा ।

४३. प्रश्न- 'तन्त्री' शब्द का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- तन्त्री शब्द अङ्गन्त है, अतः 'सु' का लोप नहीं होगा और विसर्गान्त 'तन्त्रीः' रूप ही शुद्ध होगा ।

४४. प्रश्न- 'सस्त्वां' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'सः' के बाद हलादि 'त्वां' शब्द के होने से 'एतत्दो सुलोपोऽ-कोरनज् समासे हलि' सूत्र से 'सु' का लोप होकर 'सत्वां' यह शुद्ध रूप होगा ।

४५. प्रश्न- 'ध्वजायां' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'ध्वज' शब्द स्त्रीलिङ्गं नहीं है, 'केतनं ध्वजमस्त्रियाम्' अमरकोष में आया है, अतः ध्वजायां अशुद्ध है, सप्तमी एकवचन में शुद्ध रूप 'ध्वजे' होगा ।

४६. प्रश्न- 'भुज' शब्द पुँलिलङ्ग है या स्त्रीलिङ्ग ?

उत्तर- पुँलिलङ्ग ।

४७. प्रश्न- 'कङ्कण' शब्द में कौन-सा लिङ्ग है ?

उत्तर- 'कङ्कण' शब्द नपुंसक लिङ्ग है। इसलिए 'कङ्कणः' के स्थान पर 'कङ्कणम्' शुद्ध रूप होगा।

४८. प्रश्न- 'कौस्तुभं भाति' का शुद्ध प्रयोग क्या होगा ?

उत्तर- 'कौस्तुभ' पुँलिलङ्ग है, अतः शुद्ध पाठ 'कौस्तुभो भाति' होगा।

४९. प्रश्न- 'अखिलान् पापान्' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'पाप' शब्द नपुंसक लिङ्ग है, अतः अखिलं पापम् या अखिलानि पापानि पाठ शुद्ध होगा।

५०. प्रश्न- 'महद्घोरे' का शुद्ध रूप 'महाघोरे' कैसे बनेगा ?

उत्तर- 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' सूत्र से आत्व होकर महाघोरे शुद्ध रूप बनेगा।

५१. प्रश्न- 'एव' के योग में 'तव' का 'ते' आदेश क्यों नहीं होता है ?

उत्तर- 'न चवाहाहैवयुक्ते' से इस सूत्र से निषेध होने के कारण।

५२. प्रश्न- सुहद्वाची मित्र शब्द कौन-से लिङ्ग का है ?

उत्तर- सुहद्वाची मित्र शब्द नपुंसकलिङ्ग है, अतः मित्रम् पाठ शुद्ध होगा।

५३. प्रश्न- भाजनवाचक और योग्यवाचक 'पात्र' शब्द में कौन लिङ्ग है ?

उत्तर- नपुंसकलिङ्ग ।

५४. प्रश्न- 'विना' के योग में कौन-कौन सी विभक्ति प्रयुक्त होती है ?

उत्तर- द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

५५. प्रश्न- 'पद्मगन्धं' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- उपमान पूर्व में होने से गन्ध शब्द के 'उपमानाच्च' सूत्र से इकारान्त हो जाने पर 'पद्मगन्धं' यह शुद्ध रूप होगा।

५६. प्रश्न- 'जयन्ते' शुद्ध है या 'जयन्ति' ?

उत्तर- 'जि' धातु भ्वादि गण में परस्मैपदी मानी गयी है, अतः शुद्ध रूप 'जयन्ति' ही होगा।

५७.प्रश्न- 'सुष्टुतः' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'सुः पूजायाम्' सूत्र से 'सु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई, जो उपसर्ग संज्ञा की बाधिका है, अतः यहाँ पत्वरहित 'सुस्तुतः' रूप ही शुद्ध प्रयोग होगा ।

५८.प्रश्न- 'एकाङ्गुल्या' शब्द का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'एकाङ्गुल्या' शब्द में तत्पुरुष समास होने के कारण 'तत्पुरुषस्या-ङुले: संख्याव्यावदेः' इस सूत्र से नित्य ही समासान्त अच् प्रत्यय होगा और शुद्ध रूप 'एकाङ्गुलेन' होगा ।

५९.प्रश्न- 'कृष्णः सर्पः' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' इस सूत्र में 'बहुल्' ग्रहण होने से जातिविशेष 'सर्प' में नित्य समास होगा और 'कृष्णसर्पः' यह शुद्ध रूप होगा ।

६०.प्रश्न- 'निमन्त्रयित्वा' का शुद्ध रूप 'निमन्त्र्य' कैसे सम्भव है ?

उत्तर- 'नि' पूर्वक एयन्त 'मन्त्र' धातु से क्त्वा प्रत्यय हुआ है, अतः 'समासेऽनन्यूर्वे क्त्वो ल्यप्' इस सूत्र से 'क्त्वा' के स्थान में नित्य ल्यप् होने से सम्भव है ।

६१.प्रश्न- 'प्रत्येकात्' रूप शुद्ध होगा या 'प्रत्येकम्' ?

उत्तर- 'प्रत्येकात्' रूप पञ्चम्यन्त है और अव्ययीभाव होने से साधु है किन्तु प्रश्न क्रिया का विशेषण होने से यहाँ कर्म कारक होगा और द्वितीयान्त 'प्रत्येकं' रूप ही शुद्ध होगा ।

६२.प्रश्न- 'द्वे अशुद्धि' में पूर्वरूप क्यों नहीं होगा ?

उत्तर- एदन्त द्विवचन 'द्वे' की 'ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्याम्' से प्रगृह्यसंज्ञा होकर 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इस नियम से प्रकृतिभाव हो जाने से पूर्वरूप नहीं होगा ।

६३.प्रश्न- 'शब्दवेत्ता' समास होकर बना है किन्तु समास का निषेध होने पर शुद्ध प्रयोग क्या होगा ?

उत्तर- 'शब्दवेत्ता' प्रयोग अशुद्ध है, क्योंकि 'तृजकाभ्यां कर्त्तरि' सूत्र से षष्ठी समास का निषेध हो जाने से षष्ठ्यन्त प्रयोग 'शब्दस्य वेत्ता' ही शुद्ध प्रयोग होगा ।

६४.प्रश्न- ‘एकात्’ का शुद्ध रूप क्या होगा और कैसे ?

उत्तर- ‘एक’ शब्द के सर्वनामवाची होने से पञ्चमी विभक्ति में ‘डसिङ्ग्योः स्मात्स्मिनौ’ इस सूत्र से ‘डस्’ के स्थान में ‘स्मात्’ आदेश होने से ‘एकस्मात्’ यह शुद्ध रूप होगा ।

६५.प्रश्न- ‘आयुर्वेदो चिकित्सायाः’ का शुद्ध रूप क्या है और कैसे ?

उत्तर- उपरोक्त स्थल में ‘हश्’ वर्ण पर न होने के कारण विसर्ग के स्थान में उत्त्व नहीं होगा । विसर्ग का सत्त्व होकर श्वृत्व होने के कारण ‘आयुर्वेदश्चिकित्सायाः’ यह शुद्ध रूप होगा ।

६६.प्रश्न- ‘हानिकारका’ रूप समस्त होने से क्यों अशुद्ध है ?

उत्तर- ‘तृजकाभ्यां कर्तरि’ इस सूत्र से षष्ठी समास का निषेध हो जाने से ‘हानिकारका’ रूप न होकर ‘हानेः कारिका’ यह रूप होगा ।

६७.प्रश्न- ‘पादखञ्जः’ रूप अशुद्ध क्यों है ?

उत्तर- ‘येनाङ्गविकारः’ सूत्र से तृतीया में ‘पादेन खञ्जः’ रूप बनता है । तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन’ इस समासविधायक सूत्र की प्राप्ति न होने से ‘पादखञ्जः’ रूप अशुद्ध है ।

६८.प्रश्न- ‘अन्याशां’ का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- ‘अन्यदाशां’ यह शुद्ध रूप होगा ।

६९.प्रश्न- ‘त्रुटीनेकाधिकान् मम’ क्यों अशुद्ध है ?

उत्तर- ‘त्रुटि’ शब्द स्त्रीलिङ्ग है । ‘स्त्रियां मात्रा त्रुटिः’ अमरकोश में आया है । उसका द्वितीया बहुवचन का रूप ‘त्रुटीः’ होगा और उसका विशेषण भी तदनुरूप ही होगा । फलतः ‘त्रुटीरेकाधिका मम’ शुद्ध रूप होगा ।

७०.प्रश्न- ‘तिरोभूत्वा’ का शुद्ध रूप क्या तथा कैसे होगा ?

उत्तर- ‘तिरस्’ इस पूर्व पद के अव्यय होने से भूत्वा के साथ इसका अनित्य समास होगा और ‘समासेऽनञ्च्यूर्वे क्त्वो ल्यप्’ से क्त्वा के स्थान में ल्यप् हो जाने से ‘तिरोभूय’ यह शुद्ध रूप होगा ।

७१.प्रश्न- ‘अनर्थ’ का शुद्ध रूप क्या बनेगा ?

उत्तर- बहुत्रीहि समास अभिप्रेत होने के कारण 'अर्थात्रिभः' से नित्य 'कप्' प्रत्यय होगा और 'अनर्थ' यह रूप न बनकर 'अनर्थकम्' यह शुद्ध रूप बनेगा ।

७२.प्रश्न- 'वाङ्मनोऽतीताय' में वाङ्मनस् के अच् प्रत्यायन्त निपातन हो जाने पर क्या रूप होगा ?

उत्तर- 'वाङ्मनसातीताय' यह शुद्ध रूप होगा ।

७३.प्रश्न- 'सकुटुम्बाय ते स्वस्ति' इस वाक्य का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- आशीर्वाद के प्रसङ्ग में 'सह' शब्द अपने प्रकृत रूप में ही रहता है, अतः शुद्ध वाक्य 'सहकुटुम्बाय ते स्वस्ति' होगा ।

७४.प्रश्न- विजिगीषति का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'वि' उपसर्गपूर्वक 'जि' धातु के 'विपराभ्यां जे:' सूत्र से आत्मने-पदी हो जाने पर इसका शुद्ध रूप होगा 'विजिगीषते' ।

७५.प्रश्न- 'नौ देहि पुस्तकमेतत्' इस वाक्य में अशुद्ध क्या है ?

उत्तर- वाक्य के आदि में 'आवाभ्याम्' को अनुदात्त 'नौ' आदेश नहीं होता— 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' । अतः यहाँ 'आवाभ्याम्' ही शुद्ध रूप होगा ।

७६.प्रश्न- 'दशदिवसानन्तरं' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'दशदिवस' में द्विगु समास है । अतः 'द्विगोः' सूत्र से डीप् हो जाने पर 'दशदिवसी' और सन्धि होने पर 'दशदिवस्यनन्तरम्' यह शुद्ध रूप होगा ।

७७.प्रश्न- 'अविहरत्' अशुद्ध कैसे है तथा शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'अट्' आगम धातु का अव्यवहित पूर्ववर्ती होगा और वि उपसर्ग अट् आगम के आगे जुड़ेगा, पीछे नहीं । अतः 'व्यहरत्' शुद्ध रूप होगा ।

७८.प्रश्न- 'मातृपितरौ' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'मातापितरौ' यह शुद्ध रूप होगा ।

७९.प्रश्न- 'वधोः' का शुद्ध रूप 'वध्वा:' कैसे होगा ?

उत्तर- नदीसंज्ञक वधू शब्द को 'आण्नद्याः' से आडागम होकर षष्ठी एकवचन में 'वध्वा:' शुद्ध रूप होगा ।

८०. प्रश्न- 'स्वपत्या' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'स्वपतिना'; क्योंकि समासयुक्त पति शब्द का 'पतिः समास एव' से घिसंज्ञा होकर 'आडो नाऽस्त्रियाम्' से तृतीया एकवचन में 'आड़' को 'ना' आदेश हो जाने पर 'स्वपतिना' शुद्ध रूप होगा ।

८१. प्रश्न- 'बिभ्रन्ति' का शुद्ध रूप 'बिभ्रति' कैसे होगा ?

उत्तर- 'झि' के 'झ' को 'अदभ्यस्तात्' सूत्र से अत् आदेश होकर 'बिभ्रति' यह शुद्ध रूप होगा ।

८२. प्रश्न- 'परिश्वकार' का शुद्ध रूप 'परिचस्कार' कैसे होगा ?

उत्तर- 'संपरिभ्यां करोतौ भूषणे' से होने वाला कृ धातु का सुट् आगम अभ्यास का परवर्ती होगा । अतः परिचस्कार यह शुद्ध रूप होगा ।

८३. प्रश्न- 'अग्निसोमौ' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'अग्नि' शब्द के उत्तरपद में 'सोम' शब्द के होने से देवताद्वन्द्व में 'ईदग्नेः सोमवरुणयोः' सूत्र से ईद् आदेश और 'अग्नेः स्तुत्स्तोम सोमाः' इस सूत्र से 'सोम' के सकार का षत्व होकर 'अग्नीषोमौ' यह शुद्ध रूप होगा ।

८४. प्रश्न- 'प्रणष्टम्' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'नशेः षान्तस्य' से णत्व का निषेध होकर प्रनष्टम् यह शुद्ध रूप होगा ।

८५. प्रश्न- 'पठनपाठनाद्यगोचरीभूय' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- अव्यय का अव्ययेतर के साथ समास साधारणतया निषिद्ध है और गोचर शब्द अजहल्लिङ्ग है, अतः 'पठनपाठनाद्यगोचरा भूत्वा' यह शुद्ध रूप होगा ।

८६. प्रश्न- 'रसिकभार्यः' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- रसिका शब्द की उपधा में ककार है, अतः 'न कोपधायाः' सूत्र से इसके पुँवद्वाव का निषेध हो जाने पर रसिकाभार्यः यह शुद्ध रूप होगा ।

८७.प्रश्न- 'काकीशावः' का शुद्ध रूप 'काकशावः' कैसे होगा ?

उत्तर- 'काकी' शब्द के कुकुट्यादिगण में और 'शाव' शब्द के अण्डादिगण में आने से 'कुकुट्यादीनामण्डादिषु' इस वार्तिक से काकी शब्द का पुँवद्धाव होकर 'काकशावः' यह शुद्ध रूप होगा ।

८८.प्रश्न- 'शुश्रूषति' का शुद्ध रूप आत्मनेपद में क्या होगा ?

उत्तर- 'जाश्रुस्मृदृशां सनः' से सन्नन्त 'श्रु' धातु के आत्मनेपदी हो जाने पर 'शुश्रूषते' यह शुद्ध रूप होगा ।

८९.प्रश्न- 'वितरितम्' शब्द कैसे अशुद्ध रूप है, इसका शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'श्रुकः किति' से इट् का निषेध हो जाने पर 'वितीर्णम्' शुद्ध रूप होगा ।

९०.प्रश्न- 'आदत्तबहुधनः' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'अच उपसर्गात्तः' सूत्र से दकार का तकार हो जाने पर 'आत्तबहुधनः' यह शुद्ध रूप होगा ।

९१.प्रश्न- 'पादोपहतो' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु' सूत्र से 'पाद' को 'उपहत' शब्द के पूर्ववर्ती होने से पद आदेश होकर 'पदोपहतो' शुद्ध रूप होगा ।

९२.प्रश्न- सभान्त तत्पुरुष के पूर्व में 'रक्षः' शब्द के सप्तमी होने पर कौन सा लिङ्ग व रूप होगा ?

उत्तर- रक्षः शब्द पूर्व में होने से सभान्तः तत्पुरुष के 'सभाराजाऽमनुष्यपूर्वा' सूत्र से नपुंसक लिङ्ग हो जाने पर सप्तमी में 'रक्षःसभेषु' यह शुद्ध रूप होगा ।

९३.प्रश्न- 'सम्प्रवदन्ति' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'व्यक्तवाचां समुच्चारणे' सूत्र से आत्मनेपद का विधान होकर 'सम्प्रवदन्ते' यह शुद्ध रूप होगा ।

९४.प्रश्न- 'कम्पयते' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- चलनार्थक कम्प धातु से एयन्त में 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' सूत्र

से आत्मनेपद का निषेध होकर परस्मैपद में शुद्ध रूप 'कम्पयति' होगा ।

१५.प्रश्न- 'अताडयत्' का 'ताडयति' रूप कैसे शुद्ध मानते हैं ?

उत्तर- निन्दा का प्रसङ्ग होने से 'गर्हयां लडपिजात्वोः' सूत्र से सभी लकारों का अपवादस्वरूप लट् होगा और 'ताडयति' यह शुद्ध रूप होगा ।

१६.प्रश्न- 'न श्रद्धधे किङ्किल त्वं वेश्यां स्निह्यसि' इस वाक्य में स्निह्यसि का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'किङ्किलास्त्यर्थेषु लट्' सूत्र से लट् का रूप 'स्नेध्यसि' होगा ।

१७.प्रश्न- 'सुखापहो भवति' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'अपे क्लेशतमसोः' की प्राप्ति का प्रसङ्ग न होने के फलस्वरूप 'किवप्' होकर 'सुखापहा' यह शुद्ध रूप होगा ।

१८.प्रश्न- 'मुख व्याददन् पानीयं याचते' वाक्य में व्याददन् का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'नाभ्यस्ताच्छतुः' सूत्र से 'नुम्' का निषेध होकर 'व्याददत्' यह शुद्ध रूप होगा ।

१९.प्रश्न- 'गुरुं प्रार्थयित्वा गृहं गच्छत' यह वाक्य कहाँ अशुद्ध है ?

उत्तर- 'समासेऽनञ् पूर्वे कत्वो ल्यप्' इस सूत्र से ल्यप् आदेश होकर 'प्रार्थ्य' यह शुद्ध रूप होगा ।

१००.प्रश्न- 'ब्रविष्यति' का शुद्ध रूप क्या बनेगा ?

उत्तर- 'ब्रुवो वचिः' से 'ब्रू' का वचि आदेश होकर लट् की विवक्षा में 'वक्ष्यति' शुद्ध रूप होगा ।

१०१.प्रश्न- 'अग्निसन्तप्तमयोऽपि दहिष्यति' इस वाक्य में 'दहिष्यति' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'इट्' की प्राप्ति न होने से 'धक्ष्यति' शुद्ध रूप होगा ।

१०२.प्रश्न- 'गृहीष्यामि' शुद्ध है या 'ग्रहीष्यामि' ?

उत्तर- लट् लकार में सम्प्रसारण की प्रसक्ति न होने से 'ग्रहीष्यामि' यह शुद्ध रूप होगा ।

१०३.प्रश्न- 'न स विद्यां लभेत् क्वचित्' वाक्य में लभेत् का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'डुलभष्' धातु आत्मनेपदी है, अतः शुद्ध रूप 'लभेत्' होगा ।

१०४.प्रश्न- 'त्यागिनस्तु न दरिद्रान्ति' का शुद्ध वाक्य क्या होगा ?

उत्तर- 'अदभ्यस्तात्' से इ को अत् आदेश हो जाने पर बहुवचन में 'त्यागिनस्तु न दरिद्रति' यह शुद्ध वाक्य होगा ।

१०५.प्रश्न- 'मदग्रे च अचीकथत्' वाक्य का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'अचीकथत्' प्रयोग अशुद्ध है । अग्लोपी 'अचकथत्' यह शुद्ध रूप होगा ।

१०६.प्रश्न- 'कृष्णे जाते कंसप्रहरिमण्डलं असुस्वपत्' इस वाक्य में असु-स्वपत् का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- णिच् की आवश्यकता न होने से 'अस्वपत्' शुद्ध रूप होगा ।

१०७.प्रश्न- 'अस्मादृशो युष्मादृशं न सिषेविषति' इस वाक्य में गुप्त अशुद्धि कहाँ है ?

उत्तर- 'पूर्ववत्सनः' से आत्मनेपद होकर 'सिषेविषते' शुद्ध रूप होगा ।

१०८.प्रश्न- 'मृत्तिकामबिभक्षत्' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'णिच्' अनुपयोगी है, अतः शुद्ध रूप 'अभक्षत्' होगा ।

१०९.प्रश्न- 'सुरापानेषु देशेषु ब्राह्मणा न यान्ति' वाक्य में अशुद्धि क्या है ?

उत्तर- 'पानं देशे' इस सूत्र से एत्व होकर 'सुरापाणेषु' शुद्ध रूप होगा ।

११०.प्रश्न- 'मैत्रो नारायणार्चनाय नितरां कुशलोऽस्ति' इस वाक्य का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्' सूत्र से षष्ठी या सप्तमी होकर 'नारायणार्चनस्य' या 'नारायणार्चने' यह शुद्ध रूप होंगे ।

१११.प्रश्न- 'पितृच्छात्रादाहं व्याकरणमपठम्' में 'पितृच्छात्रादाहं' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः' सूत्र से अलुक् समास होकर पितु-श्छात्रात् यह शुद्ध रूप होगा ।

११२.प्रश्न- 'शिष्यमनुजिज्ञासते गुरुः' में अनुजिज्ञासते का शुद्ध रूप क्या बनेगा ?

उत्तर- 'नानोर्जः' सूत्र से सत्रन्त 'ज्ञा' धातु से आत्मनेपद का निषेध हो जाने के कारण परस्मैपद में 'अनुजिज्ञासति' ही शुद्ध रूप होगा ।

११३.प्रश्न- 'अस्मिन् महर्घे काले' वाक्य में अशुद्ध शब्द कौन-सा है ?

उत्तर- 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' इस सूत्र से आत्म होकर 'महा + अर्घ' इस स्थिति में 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ होकर शुद्ध रूप 'महार्घे' होगा ।

११४.प्रश्न- 'गाणपत्यस्य' प्रयोग कैसे अशुद्ध है तथा शुद्ध रूप क्या होगा ?

उत्तर- 'अश्वपत्यादिभ्यश्च' इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होकर 'यस्येति च' इस सूत्र से 'गणपति' के इकार का लोप हो जाने पर गणपतस्य यह शुद्ध रूप होगा ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१.प्रश्न- 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्' के प्रणेता कौन हैं ?

क. दुर्गादत्त गौड़

ग. अम्बिकादत्त व्यास

ख. शिवदत्त

घ. रामदत्त

२.प्रश्न- पं० अम्बिकादत्त व्यास के पिता का क्या नाम था ?

क. शिवदत्त व्यास

ग. विशुद्धानन्द

ख. दुर्गादत्त गौड़

घ. रामदत्त

३.प्रश्न- पं० अम्बिकादत्त व्यास का जन्मस्थान कहाँ है ?

क. जयपुर

ग. गुजरात

ख. कश्मीर

घ. पाञ्चाल

४.प्रश्न- पं० अम्बिकादत्त का जन्म कब हुआ ?

क. वि०सं० १९२५

ग. वि०सं० १९१५

ख. वि०सं० १९०५

घ. वि०सं० १९१०

५.प्रश्न- महाकवि अम्बिकादत्त का अक्षरारम्भ कब और कहाँ हुआ ?

क. वि०सं० १९१५ जयपुर

ख. वि०सं० १९२५ मथुरा

ग. वि०सं० १९१८ मथुरा

घ. वि०सं० १९२० काशी

६.प्रश्न- पं० अम्बिकादत्त व्यास की प्रथम रचना कौन-सी है ?

क. प्रस्तारदीपक

ग. शिवविवाह

ख. गणेशशतक

घ. शिवराजविजय

७.प्रश्न- पं० अम्बिकादत्त के माता का देहावसान कब हुआ ?

क. वि०सं० १९३२

ग. वि०सं० १९४०

ख. वि०सं० १९३१

घ. वि०सं० १९३५

८. प्रश्न— काशी में अम्बिकादत्त ने किस कालेज में अध्ययन किया ?

- क. गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज
- ख. काशी विद्यापीठ
- ग. संस्कृत विश्वविद्यालय
- घ. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

९. प्रश्न— ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के लेखाध्यक्ष कब हुए ?

- | | |
|----------------|----------------|
| क. वि०सं० १९४० | ग. वि०सं० १९३६ |
| ख. वि०सं० १९३५ | घ. वि०सं० १९३४ |

१०. प्रश्न— पण्डितसभा में स्वामी विशुद्धानन्द से व्यास की उपाधि कब प्राप्त की ?

- | | |
|----------------|----------------|
| क. वि०सं० १९३५ | ग. वि०सं० १९३४ |
| ख. वि०सं० १९४० | घ. वि०सं० १९३६ |

११. प्रश्न— अम्बिकादत्त व्यास ने साहित्याचार्य की उपाधि कब प्राप्त की ?

- | | |
|----------------|----------------|
| क. वि०सं० १९३७ | ग. वि०सं० १९३८ |
| ख. वि०सं० १९४२ | घ. वि०सं० १९३२ |

१२. प्रश्न— पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के पिता का देहावसान कब हुआ ?

- | | |
|----------------|----------------|
| क. वि०सं० १९४० | ग. वि०सं० १९४५ |
| ख. वि०सं० १९३७ | घ. वि०सं० १९३८ |

१३. प्रश्न— ‘गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्’ की रचना कब हुई ?

- | | |
|----------------|----------------|
| क. वि०सं० १९३५ | ग. वि०सं० १९३७ |
| ख. वि०सं० १९४२ | घ. वि०सं० १९४० |

१४. प्रश्न— ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा’ द्वारा पं० अम्बिकादत्त व्यास ने कौन-सी उपाधि प्राप्त की ?

- | | |
|-------------|-------------|
| क. घटितकाशत | ग. भारतरत्न |
| ख. भारतभूषण | घ. व्यास |

१५. प्रश्न— पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की कुल कितनी रचनायें हैं ?

- | | |
|-------|-------|
| क. ८० | ग. ५० |
| ख. ७० | घ. ७८ |

१६.प्रश्न- मधुबनी संस्कृत स्कूल के अध्यक्ष पं० अम्बिकादत्त कब बने ?

- | | |
|----------------|----------------|
| क. वि०सं० १९५० | ग. वि०सं० १९४० |
| ख. वि०सं० १९३८ | घ. वि०सं० १९३५ |

१७.प्रश्न- पं० अम्बिकादत्त व्यास ने किस पत्रिका का सम्पादन किया ?

- | | |
|-----------------|----------------|
| क. संस्कृतपीयूष | ग. पीयूषप्रवाह |
| ख. संस्कृतम् | घ. पीयूषवाणी |

१८.प्रश्न- भागलपुर जिला स्कूल अध्यक्ष पद कब आसीन हुए व्यास जी ?

- | | |
|----------------|----------------|
| क. वि०सं० १९४४ | ग. वि०सं० १९४२ |
| ख. वि०सं० १९४५ | घ. वि०सं० १९४७ |

१९.प्रश्न- बिहार-संस्कृत-सञ्चारिका की स्थापना कब की गई ?

- | | |
|----------------|----------------|
| क. वि०सं० १९४५ | ग. वि०सं० १९४४ |
| ख. वि०सं० १९४८ | घ. वि०सं० १९५० |

२०.प्रश्न- अम्बिकादत्त व्यास ने कब मिथिलाननेश से सम्मान प्राप्त किया ?

- | | |
|----------------|-----------------|
| क. वि०सं० १९४५ | ग. वि० सं० १९४० |
| ख. वि०सं० १९४८ | घ. वि० सं० १९४३ |

२१.प्रश्न- सुनीति सञ्चारिणी सभा की स्थापना किसने की ?

- | | |
|------------------|----------------------|
| क. बालकृष्ण भट्ट | ग. अम्बिकादत्त व्यास |
| ख. घनश्यामलाल | घ. कोई नहीं |

२२.प्रश्न- सनातनधर्म महामण्डल दिल्ली द्वारा अम्बिकादत्त व्यास को कौन-सी उपाधि मिली ?

- | | |
|--------------|------------|
| क. बिहारभूषण | ग. महाकवि |
| ख. भारतभूषण | घ. शतावधान |

२३.प्रश्न- 'शिवराजविजयम्' की रचना प्रारम्भ कब की ?

- | | |
|----------------|----------------|
| क. वि०सं० १९४२ | ग. वि०सं० १९४८ |
| ख. वि०सं० १९४५ | घ. वि०सं० १९५० |

२४.प्रश्न- 'गद्यमीमांसा' की रचना किसने और कब की ?

- | |
|---------------------------|
| क. शिवदत्त-वि०सं० १९४२ |
| ख. दुर्गादत्त-वि०सं० १९४७ |

ग. रामदत्त-वि०सं० १९४५

घ. अम्बिकादत्त-वि०सं० १९५०

२५. प्रश्न- प्रणित अम्बिकादत्त व्यास द्वारा 'शिवराजविजयम्' कब पूर्ण हुयी ?

क. वि०सं० १९४४

ग. वि०सं० १९५०

ख. वि०सं० १९४८

घ. वि०सं० १९५२

२६. प्रश्न- गोस्वामी बालकृष्णलाल द्वारा अम्बिकादत्त को क्या उपाधि मिली ?

क. भारतभूषण

ग. महाकवि

ख. भारतरत्न

घ. बिहारभूषण

२७. प्रश्न- अयोध्यानरेश द्वारा व्यास जी को स्वर्णपदकसहित कौन-सी उपाधि मिली ?

क. शतावधान

ग. व्यास

ख. भारतभूषण

घ. महाकवि

२८. प्रश्न- महाकवि अम्बिकादत्त व्यास का देहावसान कब हुआ ?

क. वि०सं० १९५५

ग. वि०सं० १९५७

ख. वि०सं० १९५३

घ. वि०सं० १९५८

२९. प्रश्न- गोस्वामी घनश्यामलाल द्वारा व्यास जी को कौन-सी उपाधि प्राप्त हुई ?

क. बिहारभूषण

ग. भारतभूषण

ख. भारतरत्न

घ. शतावधान

३०. प्रश्न- पं० अम्बिकादत्त व्यास महाकवि से कब सम्मानित हुए ?

क. वि०सं० १९५५

ग. वि०सं० १९४९

ख. वि०सं० १९४८

घ. वि०सं० १९५४

३१. प्रश्न- 'नोऽत्रास्ति' और 'नो अत्रास्ति' में कौन शुद्ध है ?

क. नोऽत्रास्ति

ग. दोनों

ख. नो अत्रास्ति

घ. कोई नहीं

३२.प्रश्न- 'लक्ष्मी' शब्द अड्यन्त है, अतः सु का लोप नहीं होगा तो शुद्ध रूप 'लक्ष्मी ते' का क्या होगा ?

- | | |
|----------------|----------------|
| क. लक्ष्मीस्ते | ग. लक्ष्मीः ते |
| ख. लक्ष्मी ते | घ. कोई नहीं |

३३.प्रश्न- 'सम्बन्धो पिता' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

- | | |
|------------------|-----------------|
| क. सम्बन्धः पिता | ग. सम्बन्ध पिता |
| ख. सम्बन्धो पिता | घ. कोई नहीं |

३४.प्रश्न- 'तन्त्री' शब्द अड्यन्त है, अतः सु का लोप नहीं होगा तो शुद्ध रूप क्या होगा ?

- | | |
|-------------|-------------|
| क. तन्त्री | ग. तन्त्रम् |
| ख. तन्त्रम् | घ. तन्त्रस् |

३५.प्रश्न- 'महद्घोरे' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

- | | |
|-------------|-------------|
| क. महद्घोरे | ग. महद्घोरे |
| ख. महाघोरे | घ. कोई नहीं |

३६.प्रश्न- 'श्रेयस' शब्द कौन-सा लिङ्ग है ?

- | | |
|----------------|----------------|
| क. पुँलिङ्ग | ग. स्त्रीलिङ्ग |
| ख. नपुंसकलिङ्ग | घ. उभयलिङ्ग |

३७.प्रश्न- 'जि' धातु भ्वादि गण में कौन-सा पदी है ?

- | | |
|--------------|--------------|
| क. परस्मैपदी | ग. आत्मनेपदी |
| ख. उभयपदी | घ. कोई नहीं |

३८.प्रश्न- 'कृष्णः सर्पः' शुद्ध है या 'कृष्णसर्पः' या कोई और ?

- | | |
|-----------------|----------------|
| क. कृष्णः सर्पः | ग. कृष्णसर्पः |
| ख. कृष्णसर्पः | घ. कृष्ण सर्पः |

३९.प्रश्न- 'शब्दवेत्ता' प्रयोग अशुद्ध है तो शुद्ध क्या है ?

- | | |
|----------------|-------------------|
| क. शब्दवेत्तम् | ग. शब्दस्य वेत्ता |
| ख. शब्दवेत्ता | घ. कोई नहीं |

४०.प्रश्न- 'हानिकारिका' का शुद्ध रूप क्या है ?

क. हानिकारका
ख. हानिकारिका

ग. हानिकारक
घ. हाने: कारिका

४१. प्रश्न- 'तिरोभूत्वा' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

क. तिरोभूत्वा
ख. तिरोभूय

ग. तिरः भूत्वा
घ. कोई नहीं

४२. प्रश्न- 'सकुटुम्बाय ते स्वस्ति' इस वाक्य में 'सकुटुम्बाय' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

क. सुकुटुम्बाय
ख. सकुटुम्बाय

ग. सह कुटुम्बाय
घ. कोई नहीं

४३. प्रश्न- 'यो राजा शत्रुं न विजगीषति' इस वाक्य में विजगीषति का शुद्ध रूप क्या होगा ?

क. विजगीषते
ख. विजीषति

ग. विजगीषते
घ. विजीगीषति

४४. प्रश्न- 'दशादिवस' में कौन-सा समास है ?

क. अव्ययीभाव
ख. कर्मधारय

ग. द्विगु
घ. द्वन्द्व

४५. प्रश्न- 'अविहरत्' का शुद्ध रूप क्या है ?

क. अविहरत्
ख. अव्यहरत्

ग. अव्यहरत
घ. व्यहरत्

४६. प्रश्न- 'गम्' धातु के आत्मनेपद में लट्टलकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप क्या होगा ?

क. गमिष्यते
ख. गमस्यते

ग. गंस्यते
घ. गन्ता

४७. प्रश्न- 'वधोः' का षष्ठी एकवचन में शुद्ध रूप क्या होगा ?

क. वधुः
ख. वध्वा:

ग. वध्वोः
घ. कोई नहीं

४८. प्रश्न- 'एते छात्रा विशदं संस्कृतबोधं बिभ्रन्ति' इस वाक्य में बिभ्रन्ति का शुद्ध रूप क्या होगा ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

क. बिभ्रति

ख. बिभ्रन्तः

ग. बिभ्रन्ति

घ. बिभ्रतः

४९.प्रश्न- 'परिश्वकार' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

क. परिश्वकार

ख. परिस्वकार

ग. परिच्वकार

घ. कोई नहीं

५०.प्रश्न- 'प्रणष्टम्' या 'प्रणस्टम्' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

क. प्रणष्टम्

ख. प्रणस्टम्

ग. प्रनष्टम्

घ. प्रनस्टम्

५१.प्रश्न- 'काकीशावः' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

क. काकीशावः

ख. काकः शावः

ग. काकशावः

घ. काक शाव

५२.प्रश्न- 'वितरितम्' शब्द अशुद्ध है तो इसका शुद्ध रूप क्या होगा ?

क. वितीर्णम्

ख. विस्तीर्णम्

ग. वितरितम्

घ. कोई नहीं

५३.प्रश्न- सम्प्रवदन्ति का आत्मनेपद में क्या रूप होगा ?

क. सम्प्रवदन्ते

ख. सम्प्रवदते

ग. सम्प्रवदति

घ. सम्प्रवदन्ति

५४.प्रश्न- 'अपि मातरमताडयत् भवान्' इस वाक्य में अताडयत् का शुद्ध रूप क्या होगा ?

क. ताडयते

ख. अताडयत्

ग. ताडयति

घ. अताडयते

५५.प्रश्न- 'व्याददन्' का शुद्ध रूप होगा ?

क. व्याददन्

ख. व्याददत्

ग. व्यददन्

घ. व्यादादात्

५६.प्रश्न- 'ब्रविष्यति' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

क. वदिष्यति

ख. वक्ष्यति

ग. व्रविष्यति

घ. कोई नहीं

५७. प्रश्न- 'दहिष्यति' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

- | | |
|-------------|-------------|
| क. दक्ष्यति | ग. दहिष्यति |
| ख. दह्यति | घ. धक्ष्यति |

५८. प्रश्न- 'असुस्वपत्' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

- | | |
|-------------|--------------|
| क. अस्वपत् | ग. अशुस्वपत् |
| ख. असुसुवत् | घ. असुस्ववत् |

५९. प्रश्न- 'अविभक्षत्' का सही रूप क्या होगा ?

- | | |
|-------------|--------------|
| क. अभक्षत् | ग. अविभक्षत् |
| ख. अवभक्षत् | घ. कोई नहीं |

६०. प्रश्न- 'मनसा स्वर्गाय गच्छति' इस वाक्य में अशुद्ध क्या है ?

- | | |
|-----------|-------------|
| क. मनसा | ग. स्वर्गाय |
| ख. गच्छति | घ. सभी |

६१. प्रश्न- 'साधु विक्रामति हयः' इस वाक्य में अशुद्ध क्या है ?

- | | |
|--------------|-------------|
| क. साधु | ग. हयः |
| ख. विक्रामति | घ. कोई नहीं |

६२. प्रश्न- शिष्यमनुज्ञासते गुरुः में अशुद्ध क्या है ?

- | | |
|---------------|------------|
| क. अनुज्ञासते | ग. शिष्यम् |
| ख. गुरुः | घ. सभी |

६३. प्रश्न- 'महर्घे' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

- | | |
|------------|-------------|
| क. महर्घे | ग. महर्घे |
| ख. महार्घे | घ. कोई नहीं |

६४. प्रश्न- 'गाणपत्यस्य' का शुद्ध रूप क्या होगा ?

- | | |
|---------------|--------------|
| क. गाणपत्यस्य | ग. गाणपतस्य |
| ख. गणपतस्य | घ. गणपत्यस्य |



उत्तरमाला

१. ग	१७. ग	३३. क	४९. ग
२. ख	१८. क	३४. ग	५०. ग
३. क	१९. ग	३५. ख	५१. ग
४. ग	२०. क	३६. ख	५२. क
५. घ	२१. ग	३७. क	५३. क
६. क	२२. क	३८. ग	५४. ग
७. ख	२३. ख	३९. ग	५५. ख
८. क	२४. घ	४०. घ	५६. ख
९. घ	२५. ग	४१. ख	५७. घ
१०. ग	२६. ख	४२. ग	५८. क
११. क	२७. क	४३. क	५९. क
१२. ख	२८. ग	४४. ग	६०. ग
१३. ग	२९. ग	४५. घ	६१. ख
१४. क	३०. क	४६. ग	६२. क
१५. घ	३१. ख	४७. ख	६३. ख
१६. ग	३२. क	४८. क	६४. ग

४१५



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

संस्कृत-विषयक सभी प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु उपयोगी पुस्तकें

संस्कृतशिक्षणम्

व्याकरण-साहित्य-ज्योतिष-दर्शनशास्त्र-शिक्षणसहितम्

डॉ. उदय शंकर झा

संस्कृत शास्त्र-मञ्चूषा

डॉ. उदयशंकर झा

विषयवस्तु—● वैदिकसाहित्यअध्ययनम् ● व्याकरणशास्त्रअध्ययनम् ● छन्द(साहित्य-शास्त्र)अध्ययनम् ● ज्योतिषशास्त्रअध्ययनम् ● शिक्षाशास्त्रअध्ययनम् ● शिक्षा-निरुक्त-कल्प-अध्ययनम् ● भाषाविज्ञानअध्ययनम् ● पुराणोत्तिहास-अध्ययनम् ● धर्मशास्त्र-कर्मकाण्डअध्ययनम् ● विषयानुसारेण वस्तुनिष्ठप्रश्नोत्तराणि

चिरन्तनी

पूर्वशिक्षाशास्त्री मार्गोपदेशिका

डॉ. रमाकान्तमिश्रः

● राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली ● राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति ● श्री लाल-बहादुरशास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली ● जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर एवं अन्य सभी विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित पूर्वशिक्षाशास्त्रीपरीक्षा के पाठ्यक्रमानुसार।

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129

वाराणसी 221001

दूरभाष : (0542) 2335263

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : (011) 23286537

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बडोदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069

वाराणसी

दूरभाष : (0542) 2420404

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष (011) 23856391